CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

UPSC & STATE PSCs

समाजशास्त्र

प्रश्नोत्तर रूप में

आईएएस मुख्य परीक्षा अध्यायवार हल प्रश्न-पत्र 2008-2023

1998–2007 अध्यायवार हल प्रश्न–पत्र
chronicleindia.in पर निःशुल्क उपलब्ध

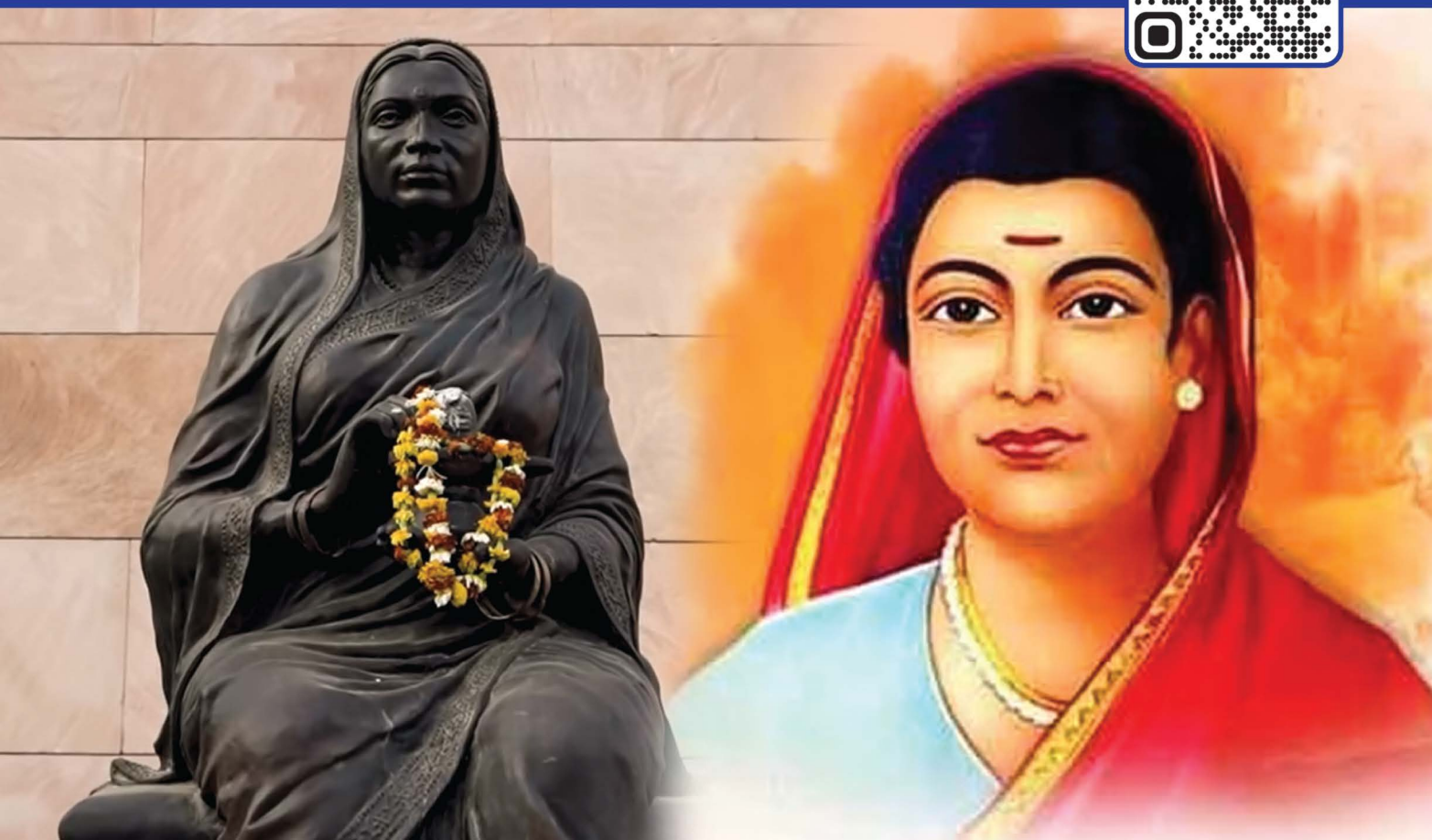

समाजशास्त्र

प्रश्नोत्तर रूप में

आईएएस मुख्य परीक्षा अध्यायवार हल प्रश्न-पत्र 2008-2023

वर्ष 2008 से पूर्व के हल प्रश्न-पत्रों के अध्ययन हेतु आप chronicleindia.in पर विजिट कर सकते हैं; ये प्रश्न-पत्र पाठकों के लिए निःशुल्क उपलब्ध हैं।

यह पुस्तक संघ लोक सेवा आयोग की सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के वैकल्पिक विषय के साथ-साथ राज्य लोक सेवा आयोगों की मुख्य परीक्षाओं तथा अन्य समकक्ष प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु भी समान रूप से उपयोगी है।

- पुस्तक में प्रश्नों के उत्तर को मॉडल हल के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रश्नों को हल करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि उत्तर सारगर्भित हों तथा पूछे गए प्रश्नों के अनुरूप हों।
- इस पुस्तक में प्रश्नों से संबंधित अन्य विशिष्ट जानकारियों को भी उत्तर में समाहित किया गया है, ताकि अभ्यर्थी इसका उपयोग न सिर्फ हल प्रश्न-पत्र के रूप में, बल्कि अध्ययन सामग्री के रूप में भी कर सकें।
- इस पुस्तक का उपयोग अभ्यर्थी अपनी उत्तर लेखन शैली में सुधार लाने तथा प्रश्नों की प्रवृत्ति व प्रकृति को समझने के लिए भी कर सकते हैं।

संपादकः एन. एन. ओझा

हलः क्रॉनिकल संपादकीय समूह

CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

अनुक्रमणिका

अध्यायवार हल प्रश्न-पत्र, 2008-2023

- **समाजशास्त्र मुख्य परीक्षा 2023 हल प्रश्न-पत्र-I 1-16**
- **समाजशास्त्र मुख्य परीक्षा 2023 हल प्रश्न-पत्र-II 17-32**

प्रथम प्रश्न-पत्र

1. **समाजशास्त्रः विद्याशाखा..... 1-18**
   - क) यूरोप में आधुनिकता एवं सामाजिक परिवर्तन तथा समाजशास्त्र का अविर्भाव
   - ख) समाजशास्त्र का विषय-क्षेत्र एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों से इसकी तुलना
   - ग) समाजशास्त्र एवं सामान्य बोध।
2. **समाजशास्त्रः विज्ञान के रूप में..... 19-34**
   - क) विज्ञान, वैज्ञानिक पद्धति एवं समीक्षा
   - ख) अनुसंधान क्रिया विधि के प्रमुख सैद्धांतिक तत्व
   - ग) प्रत्यक्षवाद एवं इसकी समीक्षा
   - घ) तथ्य, मूल्य एवं उद्देश्यपरकता
   - ड़) प्रत्यक्षवादी क्रियाविधियां
3. **अनुसंधान पद्धतियां एवं विश्लेषण..... 35-57**
   - क) गुणात्मक एवं मात्रात्मक पद्धतियां
   - ख) दत्त संग्रहण की तकनीक
   - ग) परिवर्तन, प्रतिचयन, प्राक्कल्पना, विश्वसनीयता एवं वैधता
4. **समाजशास्त्री चिंतक..... 58-101**
   - क) कार्ल मार्क्स- ऐतिहासिक भौतिकवाद, उत्पादन विधि, विसंबंधन, वर्ग संघर्ष
   - ख) इमाईल दुखीम- श्रम विभाजन, सामाजिक तथ्य, आत्महत्या, धर्म एवं समाज।
   - ग) मैक्स वेबर- सामाजिक क्रिया, आदर्श प्रारूप, सत्ता, अधिकारीतंत्र, प्रोटेस्टेंट नीति शास्त्र और पूंजीवाद की भावना।
   - घ) तालकॉट पार्सन्स-सामाजिक व्यवस्था, प्रतिरूप परिवर्त
   - ड़) राबर्ट के मर्टन-अव्यक्त तथा अभिव्यक्त प्रकार्य अनुरूपता एवं विसामान्यता, संदर्भ समूह
   - च) मीड- आत्म एवं तादात्म्य
5. **स्तरीकरण एवं गतिशीलता..... 102-121**
   - क) संकल्पनाएं-समानता, असमानता, अधिक्रम, अपवर्जन, गरीबी एवं वंचना
   - ख) सामाजिक स्तरीकरण के सिद्धांत - संरचनात्मक प्रकार्यवादी सिद्धांत, मार्क्सवादी सिद्धांत, वेबर का सिद्धांत
   - ग) आयाम-वर्ग, स्थिति समूहों, लिंग, नृजातीयता एवं प्रजाति का सामाजिक स्तरीकरण
   - घ) सामाजिक गतिशीलता-खुली एवं बंद व्यवस्थाएं, गतिशीलता के स्रोत एवं कारण
6. **कार्य एवं आर्थिक जीवन..... 122-136**
   - क) विभिन्न प्रकार के समाजों में कार्य का सामाजिक संगठन-दास समाज, सामंती समाज, औद्योगिक/पूंजीवादी समाज
   - ख) कार्य का औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन
   - ग) श्रम एवं समाज
7. **राजनीति और समाज..... 137-156**
   - क) सत्ता के समाजशास्त्रीय सिद्धांत
   - ख) सत्ता प्रव्रजन, अधिकारीतंत्र, दबाव समूह, राजनैतिक दल
   - ग) राष्ट्र, राज्य, नागरिकता, लोकतंत्र, सिविल समाज, विचारधारा
   - घ) विरोध, आंदोलन, सामाजिक आंदोलन, सामूहिक क्रिया, क्रांति
8. **धर्म एवं समाज..... 157-167**
   - क) धर्म के समाजशास्त्रीय सिद्धांत
   - ख) धार्मिक क्रम के प्रकार : जीववाद, एकतत्ववाद, बहुतत्ववाद, पंथ, उपासना, पद्धतियां
   - ग) आधुनिक समाज में धर्म : धर्म एवं विज्ञान, धर्म निरपेक्षीकरण, धार्मिक पुनः प्रवर्तनवाद, मूलतत्ववाद
9. **नातेदारी की व्यवस्थाएं..... 168-182**
   - क) परिवार, गृहस्थी, विवाह
   - ख) परिवार के प्रकार एवं रूप
   - ग) वंश एवं वंशानुक्रम
   - घ) पितृतंत्र एवं श्रम का लिंगाधारिक विभाजन
   - ड़) समसामयिक प्रवृत्तियां
10. **आधुनिक समाज में सामाजिक परिवर्तन..... 183-210**
    - क) सामाजिक परिवर्तन के समाजशास्त्रीय सिद्धांत
    - ख) विकास एवं पराश्रितता
    - ग) सामाजिक परिवर्तन के कारक
    - घ) शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन
    - ड़) विज्ञान प्रौद्योगिकी एवं सामाजिक परिवर्तन

द्वितीय प्रश्न-पत्र

भारतीय समाज : संरचना एवं परिवर्तन

भारतीय समाज का परिचय

1. **भारतीय समाज के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य.....211-222**
   - क) भारतीय विद्या (जी एस धुर्ये)
   - ख) संरचनात्मक प्रकार्यवाद (एम.एन. श्रीनिवास)
   - ग) मार्क्सवादी समाजशास्त्र (ए.आर. देसाई)
2. **भारतीय समाज पर औपनिवेशिक शासन का प्रभाव..... .....223-229**
   - क) भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि
   - ख) भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण
   - ग) औपनिवेशिककाल के दौरान विरोध एवं आंदोलन
   - घ) सामाजिक सुधार

सामाजिक संरचना

3. **ग्रामीण एवं कृषिक सामाजिक संरचना.....230-239**
   - क) भारतीय ग्राम का विचार एवं ग्राम अध्ययन
   - ख) कृषिक सामाजिक संरचना-पटटेदारी प्रणाली का विकास, भूमि सुधार
4. **जाति व्यवस्था.....240-252**
   - क) जाति व्यवस्था के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य (जी.एस. धुर्ये, समसन श्रीनिवास, लुईद्यूमां, आंद्रे बेतेय)
   - ख) जाति व्यवस्था के अभिलक्षण
   - ग) अस्पृशयता-रूप एवं परिप्रेक्ष्य
5. **भारत में जनजातीय समुदाय.....253-263**
   - क) परिभाषीय समस्याएं
   - ख) भौगोलिक विस्तार
   - ग) औपनिवेशिक नीतियां एवं जनजातियां
   - घ) एकीकरण एवं स्वायता के मुद्दे
6. **भारत में सामाजिक वर्ग.....264-269**
   - क) कृषिक वर्ग संरचना
   - ख) औद्योगिक वर्ग संरचना
   - ग) भारत में मध्यम वर्ग
   - घ) परंपरागत भारतीय सामाजिक संगठन
7. **भारत में नातेदारी की व्यवस्थाएं.....270-282**
   - क) भारत में वंश एवं वंशानुक्रम
   - ख) नातेदारी व्यवस्थाओं के प्रकार
   - ख) भारत में परिवार एवं विवाह
   - घ) परिवार घरेलू आयाम
   - ड़) पितृतंत्र, हकदारी एवं श्रम का लिंगाधारित विभाजन
8. **धर्म एवं समाज.....283-291**
   - क) भारत में धार्मिक समुदाय
   - ख) धार्मिक अल्पसंख्याकों की समस्याएं

भारत में सामाजिक परिवर्तन

9. **भारत में सामाजिक परिवर्तन की दृष्टियां.....292-309**
   - क) विकास आयोजना एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था का विचार
   - ख) संविधान, विधि एवं सामाजिक परिवर्तन
   - ग) शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन
   - घ) महिला और समाज
10. **भारत में ग्रामीण एवं कृषि रूपांतरण.....310-319**
   - क) ग्रामीण विकास कार्यक्रम, समुदाय विकास कार्यक्रम, सहकारी संस्थाएं, गरीबी उन्मूलन योजनाएं
   - ख) हरित क्रांति एवं सामाजिक परिवर्तन
   - ग) भारतीय कृषि में उत्पादन की बदलती विधियां
   - घ) ग्रामीण मजदूर, बंधुआ एवं प्रवासन की समस्याएं
11. **भारत में औद्योगिकरण एवं नगरीकरण.....320-334**
   - क) भारत में आधुनिक उद्योग का विकास
   - ख) भारत में नगरीय बस्तियों की वृद्धि
   - ग) श्रमिक वर्ग : संरचना, वृद्धि, वर्ग संघठन
   - घ) अनौपचारिक क्षेत्रक, बाल श्रमिक
   - ड़) नगरी क्षेत्र में गंदी बस्ती एवं वंचना
12. **राजनीति एवं समाज.....335-343**
   - क) राष्ट्र, लोकतंत्र एवं नागरिकता
   - ख) राजनैतिक दल, दबाव समूह, सामाजिक एवं राजनैतिक प्रव्रजन
   - ग) क्षेत्रीयतावाद एवं सत्ता का विकेन्द्रीकरण
   - घ) धर्म निरपेक्षीकरण
13. **आधुनिक भारत में सामाजिक आंदोलन.....344-358**
   - क) कृषक एवं किसान आंदोलन
   - ख) महिला आंदोलन
   - ग) पिछड़ा वर्ग एवं दलित वर्ग आंदोलन
   - घ) पर्यावरणीय आंदोलन
   - ड़) नृजातीयता एवं अभिज्ञान आंदोलन
14. **जनसंख्या गतिकी.....359-370**
   - क) जनसंख्या आकार, वृद्धि संघटन एवं वितरण
   - ख) जनसंख्या वृद्धि के घटक : जन्म, मृत्यु, प्रवासन
   - ग) जनसंख्या नीति एवं परिवार नियोजन
   - घ) उभरते हुए मुद्दे : काल प्रभावन, लिंग अनुपात, बाल एवं शिशु मृत्यु दर, जनन स्वास्थ्य
15. **सामाजिक रूपांतरण की चुनौतियां.....371-378**
   - क) विकास का संकट : विस्थापन, पर्यावरणीय समस्याएं एवं संपोषणीयता
   - ख) गरीबी, वंचन एवं असमानताएं
   - ग) स्त्रियों के प्रति हिंसा
   - घ) जाति द्वंद्व
   - ड़) नृजातीय द्वंद्व, सांप्रदायिकता, धार्मिक पुनः प्रवर्तनवाद
   - च) असाक्षरता तथा शिक्षा में समानताएं

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा-2023

समाजशास्त्र

प्रश्न-पत्र-I

समाजशास्त्र: विधाशास्त्र

प्रश्न: समाजशास्त्र और राजनीति-विज्ञान के बीच संबंध पर चर्चा कीजिए।

उत्तर: सामाजिक विज्ञान के दो अलग-अलग विषयों के रूप में समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान में एकरूपता देखने को मिलती है, इन दोनों विषयों की विषय-वस्तु समान होने के कारण इनके अभिसरण में वृद्धि हो रही है।

- समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान के मध्य संबंधों का आरंभ मार्क्स के कार्यों से माना जाता है। उनके अनुसार राजनीतिक संस्थाएँ एवं व्यवहार, आर्थिक व्यवस्था तथा सामाजिक वर्गों से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं।
- इससे प्रेरणा लेकर, 19वीं शताब्दी के अंत तक कुछ विचारकों ने दोनों विषयों के अंतर-संबंधों को और अधिक विस्तार से आगे बढ़ाने में योगदान दिया है। उदाहरण के लिए- इस संदर्भ में मिशेल्स, मार्क्स, वेबर और पेरेटो के राजनीतिक समाजशास्त्र में राजनीतिक दलों, अभिजात वर्ग, मतदान व्यवहार, नौकरशाही और राजनीतिक विचारधाराओं का अध्ययन किया गया।

समाजशास्त्र और राजनीति-विज्ञान में अंतर

- समाजशास्त्र का विषय-क्षेत्र अधिक व्यापक है और इसके अंतर्गत समाज के सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। पारंपरिक राजनीति विज्ञान के तहत किया जाने वाला अध्ययन मुख्य रूप से राज्य और सत्ता के अध्ययन तक ही सीमित रहा है।
- दृष्टिकोण के स्तर पर समाजशास्त्र अधिक विस्तृत है; जबकि राजनीति विज्ञान की विषय-वस्तु अधिक संहिताबद्ध दिखाई देती है।
- समाजशास्त्र में सरकार एवं संस्थानों के तहत आने वाले समूहों के मध्य अंतर्संबंधों पर बल दिया जाता है। दूसरी तरफ, राजनीति विज्ञान सरकार के 'अंदर' की प्रक्रियाओं पर प्रकाश डालता है।

समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान में अभिसरण

- राजनीति विज्ञान के तहत ऐसे कानून निर्मित किए जाते हैं, जो जनता के कल्याण को प्रभावित करते हैं। दूसरी तरफ, समाजशास्त्र इन कानूनों और नीतियों के निर्माण हेतु आंकड़े और आधार प्रदान करता है।
- जाति, रिश्तेदारी एवं जनसांख्यिकी आदि सामाजिक घटक राजनीतिक निर्णयों और विशेष रूप से चुनावों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- राजनीतिक संगठनों की सदस्यता, मतदान व्यवहार, जातिवाद, संगठनों में निर्णय लेने की प्रक्रिया, राजनीतिक दलों के समर्थन के समाजशास्त्रीय कारण तथा राजनीति में लिंग की भूमिका आदि पर भी समाजशास्त्रीय अध्ययन किए गए हैं, इनमें राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्रीय विषय-वस्तु का मिश्रण दिखाई देता है।

इस प्रकार, समाजशास्त्र का ध्यान सामाजिक संबंधों तथा व्यक्तियों पर सामाजिक संरचनाओं के प्रभाव पर केंद्रित रहता है; जबकि राजनीति विज्ञान सत्ता, शासन और राजनीतिक संस्थानों के अध्ययन से संबंधित है।

प्रश्न: नाटकीय परिप्रेक्ष्य रोजमर्रा की जिंदगी को समझने में हमें कैसे सक्षम बनाता है?

उत्तर: समाजशास्त्र में नाटकीय परिप्रेक्ष्य का विकास समाजशास्त्री इरविंग गोफमैन द्वारा किया गया। यह एक समाजशास्त्रीय सिद्धांत है, जो दैनिक जीवन और नाटकीय प्रस्तुति के बीच समानताओं को उजागर करता है।

- नाटकीय परिप्रेक्ष्य यह मानता है कि लोग समाज की परंपराओं, सांस्कृतिक आदर्शों और दर्शकों की अपेक्षाओं के अनुसार खुद को दूसरों के सामने चित्रित करने का प्रयास करते हैं। किसी नाटक के भिन्न-भिन्न अभिनयों के समान, वे विभिन्न परिदृश्यों में विविध भूमिकाएँ निभाते हैं।
- नाटकीय परिप्रेक्ष्य लोगों को एक मंच पर विभिन्न कृत्यों (स्थितियों) में अभिनय करने वाले अभिनेता के रूप में देखता है, जिससे हमें सामान्य जीवन को समझने में मदद मिलती है।
- यह विभिन्न सामाजिक स्थितियों में हमारी आत्म-प्रस्तुति को समझने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करता है और अन्य लोगों पर हमें अपने प्रभाव को नियंत्रित करने में मदद करता है।
- भूमिका का निर्वहन करना (अभिनय करना) नाटकीय दृष्टिकोण के मुख्य विचारों में से एक है। हममें से प्रत्येक के जीवन में एक मित्र, माता-पिता, कार्यकर्ता और छात्र आदि के रूप में विभिन्न प्रकार की जिम्मेदारियाँ हैं।

- हममें से प्रत्येक सौंपी गई भूमिकाओं के साथ आने वाले मानकों और अपेक्षाओं को बनाए रखने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए, श्रमिक के रूप में एक व्यक्ति से उत्पादक, पेशेवर और समय-पाबंद होने की अपेक्षा की जाती है।
- एक अन्य प्रमुख अवधारणा प्रभाव/इंप्रेशन प्रबंधन (Impression Management) है। यह उस पद्धति का वर्णन करती है, जिसकी सहायता से लोग उन धारणाओं को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं, जिनके आधार पर अन्य लोग उनके बारे में राय बनाते हैं। उदाहरण ार्थ कोई व्यक्ति नौकरी के लिए साक्षात्कार के समय पेशेवर पोशाक पहनता है, जिससे उसके व्यावसायिक गुणों का प्रदर्शन हो सके।
- नाटकीय दृष्टिकोण से दैनिक जीवन में एक अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है। यह इस बात पर ध्यान केंद्रित करता है कि सामाजिक अंत:क्रियाएं सतत रूप से किस प्रकार क्रियाशील रहती हैं तथा लोग सामाजिक अपेक्षाओं का सामना कैसे करते हैं। यदि दैनिक जीवन को नाटकीय परिप्रेक्ष्य की एक शृंखला के रूप में देखा जाए, तो हम सामाजिक अंत:क्रियाओं और मानव व्यवहार की जटिलताओं को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

प्रश्न: क्या आपको लगता है कि सामान्य ज्ञान सामाजिक अनुसंधान का प्रारंभिक बिंदु है? इसके लाभ और सीमाएं क्या हैं? व्याख्या कीजिए।

उत्तर: 'सामान्य ज्ञान' (Common Sense) को 'ऐसे नियमित ज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो लोगों को उनकी रोजमर्रा के जीवन एवं गतिविधियों के संदर्भ में अवगत कराता है'। 'सामान्य ज्ञान' की व्याख्याएँ आम तौर पर 'प्रकृतिवादी' और/या 'व्यक्तिवादी' व्याख्या पर आधारित होती हैं।

'सामान्य ज्ञान' सामाजिक अनुसंधान का प्रारंभिक बिंदु हो सकता है

- 'सामान्य ज्ञान' सामाजिक घटनाओं की प्रारंभिक समझ प्रदान करता है, जो इसे अनुसंधान के लिए एक उपयोगी प्रारंभिक बिंदु बनाता है। शोधकर्ता शोध प्रश्न और परिकल्पना तैयार करने के लिए 'सामान्य ज्ञान' से प्राप्त निष्कर्षों का उपयोग कर सकते हैं।
- समाजशास्त्र में अवधारणाओं को 'सामान्य ज्ञान' को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है। 'सामान्य ज्ञान' समाजशास्त्रियों को परिकल्पनाओं के निर्माण में मदद करता है।

सामाजिक अनुसंधान में 'सामान्य ज्ञान' के लाभ

- समाज के प्रत्येक व्यक्ति के पास 'सामान्य ज्ञान' तक पहुंच है, ऐसी स्थिति में किसी भी समय सामाजिक अनुसंधान कार्यों को सुविधाजनक रूप में आरंभ किया जा सकता है। समाजशास्त्री 'सामान्य ज्ञान' का विस्तार करके शोध प्रश्न (Research questions) बना सकते हैं।
- 'सामान्य ज्ञान अवलोकन' का उपयोग शोधकर्ताओं द्वारा परिकल्पनाओं के विकास के आधार के रूप में किया जा सकता है, बाद में इन परिकल्पनाओं का अनुभवजन्य अनुसंधान तकनीकों (Empirical Research Techniques) का उपयोग करके परीक्षण किया जा सकता है।
- जब 'सामान्य ज्ञान' का उपयोग किया जाता है तो सामाजिक शोध के निष्कर्ष दर्शकों के लिए अधिक सुलभ एवं समझने योग्य हो जाते हैं।

सामाजिक अनुसंधान में सामान्य ज्ञान की सीमाएँ

- व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों, सांस्कृतिक मानकों और व्यक्तिगत विचारों के कारण 'सामान्य ज्ञान' की प्रकृति आंतरिक रूप से व्यक्तिपरक है। इस व्यक्तिपरकता के परिणामस्वरूप अनुसंधान के निष्कर्ष पक्षपातपूर्ण हो सकते हैं।
- सामाजिक प्रक्रियाओं की जटिलता 'सामान्य ज्ञान' के दायरे से परे हो सकती है। 'सामान्य ज्ञान' अक्सर समस्याओं का अतिसरलीकरण करता है, जिससे गलत निष्कर्ष प्राप्त करने की संभावना बनी रहती है।
- केवल 'सामान्य ज्ञान' पर भरोसा करके अध्ययन की वैज्ञानिक दृढ़ता (Scientific rigor) से समझौता करना पड़ सकता है। व्यवस्थित डेटा संग्रह और विश्लेषण आधारित अध्ययन के बिना, 'सामान्य ज्ञान' को ही आधार मानकर किए गए अध्ययन के परिणाम केवल उपाख्यानमूलक हो सकते हैं।
- मैक्स वेबर ने केवल 'सामान्य ज्ञान' के आधार पर समाजशास्त्रीय अध्ययन न करने की सलाह दी है। उन्होंने तर्क दिया कि 'सामान्य ज्ञान' मनमाने, व्यक्तिपरक अनुभवों और आदर्शों पर आधारित होता है, इसलिए यह वैज्ञानिक जांच के लिए अविश्वसनीय हो सकता है। उन्होंने सामाजिक निष्पक्षता सुनिश्चित करने में विधि परक जांच (Methodical investigation) और मूल्य तटस्थता (Value Neutrality) के महत्व को रेखांकित किया।
- समाजशास्त्र जैसे-जैसे एक विषय के रूप में विकसित हुआ है, अनेक सीमाओं के बावजूद 'सामान्य ज्ञान' के प्रति समाजशास्त्रियों की धारणा में परिवर्तन भी हुआ है। पूर्व में जब समाजशास्त्र 'दर्शन' (Philosophy) के अधिक करीब था, तब सामान्य ज्ञान को पूरक के रूप में देखा जाता था।

इसी प्रकार, जब समाजशास्त्र 'प्रत्यक्षवाद' (Positivism) के करीब आ गया, तो 'सामान्य ज्ञान' के प्रयोग को लगभग त्याग दिया गया। आगे चलकर, 'प्रत्यक्षवाद-विरोधी' (Anti-positivist) प्रवृत्ति के तहत समाजशास्त्र में 'सामान्य ज्ञान' को पुन: महत्व देने का प्रयास किया गया। इसीलिए, 'समाजशास्त्र' एवं 'सामान्य ज्ञान' के मध्य गतिशील संबंध विकसित हुए हैं, कभी-कभी इस प्रकार के संबंध पारस्परिक रूप से मजबूत भी दिखाई देते हैं।

समाजशास्त्र: विज्ञान के रूप में

प्रश्न: सामाजिक अनुसंधान की नारीवादी विधि की विशेषता क्या है? टिप्पणी कीजिए।

उत्तर: सामाजिक विज्ञान में अनुसंधान की एक ऐसी विधि जो महिलाओं के दृष्टिकोण, अनुभवों और हितों पर बल देती है, नारीवादी अनुसंधान पद्धति कहलाती है।

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा-2023

समाजशास्त्र

प्रश्न-पत्र-II

भारतीय समाज का परिचय

प्रश्नः ए.आर. देसाई के भारतीय समाज अध्ययन के 'द्वंद्वात्मक परिप्रेक्ष्य' की महत्वपूर्ण विशेषताओं को उजागर कीजिए।

उत्तरः ए.आर. देसाई को भारतीय समाज में मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य के अग्रणी प्रणेता के रूप में जाना जाता है। उनकी मौलिक रचना 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि' में मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य का उपयोग करके भारतीय समाज का एक विस्तृत दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है।

- उनके द्वारा भारतीय समाज को समझने में 'द्वन्द्वात्मक-ऐतिहासिक दृष्टिकोण' (Dialectical-Historical Approach) का प्रयोग किया गया। उन्होंने समाज की व्याख्या 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी' आधार पर ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया के रूप में की है।
- उन्होंने यह माना है कि भारतीय समाज एवं उसकी परंपराएं आर्थिक बुनियादी ढांचे से प्रभावित हैं। इस प्रकार, उनके द्वारा उत्पादक संबंधों (Productive Relations) का अध्ययन सामाजिक संरचना एवं संस्थाओं की व्याख्या करने के लिए किया गया है।
- व्यवस्थागत दृष्टिकोण से भारतीय समाज को देखने का उनका दृष्टिकोण मार्क्सवादी मॉडल पर आधारित है। देसाई ने योजनाबद्ध विकास की विफलता के मद्देनजर 1970 के दशक में देश में मौजूद विरोधाभासों एवं संघर्षों पर प्रकाश डाला है। राज्य, राष्ट्रवाद, गाँव, किसान संघर्ष, जाति, आदि उनके अध्ययन के प्रमुख क्षेत्र थे।
- उन्होंने बताया है कि गांवों का विकास ऐतिहासिक रूप से ब्रिटिश-पूर्व युग में हुआ है तथा आर्थिक दृष्टिकोण से वे अपेक्षाकृत आत्मनिर्भर इकाई के रूप में थे।
- उन्होंने जजमानी व्यवस्था (Jajmani System) को शोषणकारी व्यवस्था के रूप में देखा। उनके अनुसार, भू-राजस्व और पट्टेदारी की व्यवस्था के कारण समाज में नए वर्गों का उदय हुआ और ब्रिटिश शासन द्वारा उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली आरंभ की गई।
- उनका मानना है कि शोषण से साझा शत्रु की पहचान होती है तथा समाज का एकीकरण होता है। उन्होंने राष्ट्रवाद के उदय की सामाजिक-सांस्कृतिक व्याख्या के स्थान पर एक आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत की। इसी के आधार पर उन्होंने स्पष्ट किया कि राष्ट्रवाद का उदय अंग्रेजों द्वारा निर्मित भौतिकवादी परिस्थितियों के विरोधाभास के परिणामस्वरूप हुआ।
- संचार के नए साधनों- रेलवे, प्रेस, डाकघर आदि ने लोगों के एकीकरण में मदद की है। वे मानते हैं कि अंग्रेजों द्वारा इस्तेमाल किए गए विभिन्न शोषणकारी तंत्रों के कारण भारतीय समाज का अनजाने में एकीकरण हुआ।

इस प्रकार, ए.आर. देसाई का 'द्वंद्वात्मक परिप्रेक्ष्य' (Dialectical Perspective) भारतीय समाज पर शोध करने के लिए एक संपूर्ण और विश्लेषणात्मक रूपरेखा प्रदान करता है।

प्रश्नः क्या परंपरा और आधुनिकता एक-दूसरे की विरोधी हैं? टिप्पणी कीजिए।

उत्तरः परंपरा एवं आधुनिकता दो अलग-अलग विचारों के प्रतीक है और इन्हें कभी-कभी परस्पर विरोधी विचारों के रूप में देखा जाता है। किंतु, भारतीय परिवेश में ये दोनों विचार स्वाभाविक रूप से एक-दूसरे के विरोधी होने के बजाय गतिशील एवं सह-अस्तित्व में पाए जाते हैं।

परंपरा एवं आधुनिकता के मध्य संबंध

- भारतीय समाज सामाजिक संरचना, परिवार, धर्म और शिक्षा सहित अनेक क्षेत्रों में परंपरा और आधुनिकता के सह-अस्तित्व को प्रदर्शित करता है। उदाहरण- देश के विभिन्न भागों में आधुनिक एकल परिवार प्रणाली और पारंपरिक संयुक्त परिवार प्रणाली सह-अस्तित्व में है।
- भारतीय परंपरा के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ब्रिटिश शासन के दौरान आरंभ हुई; किंतु यह प्रक्रिया पश्चिम की भांति रैखिक एकदिशात्मक नहीं थी। इसमें आधुनिकता एवं परंपरा के बीच एक द्वंद्वात्मक संबंध भी शामिल था, जिसके आधार पर इस प्रक्रिया में सीमित मात्रा में ही सही, किंतु आधुनिक को भी पारंपरिक बनाया गया।
- परंपरा के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से पारंपरिक संस्थानों, मूल्यों एवं मान्यताओं, जाति, परिवार, रिश्तेदारी, राजनीतिक एवं सामाजिक संगठनों तथा धर्म आदि में बदलाव देखने को मिलता है।

- इतना ही नहीं, समाज में साहित्य एवं कला के सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभाव; वैज्ञानिक एवं तार्किक सोच के वैचारिक एवं मूल्यपरक प्रभाव; सार्वभौमिकता, व्यक्तिवाद एवं धर्मनिरपेक्षता द्वारा पदानुक्रम, विशिष्टवाद आदि की मौजूदा मान्यताओं पर उठाए गए प्रश्नचिह्न तथा औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के सामाजिक संरचना पर डाले गए प्रभावों को भी देखा जा सकता है।
- हालाँकि, भारत में परंपरा एवं आधुनिकता के विचार सदैव एक साथ दिखाई नहीं देते हैं। इन्हें अक्सर विसंगतियों के रूप में देखा जाता है, जो समाज के भीतर संघर्ष एवं तनाव के उत्प्रेरक का कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए, समानता एवं सामाजिक न्याय के आधुनिक विचार प्राचीन जाति संरचना के साथ असंगत हैं। इसी प्रकार, बाल विवाह की प्रथा भी वैवाहिक उम्र के निर्धारण हेतु निर्मित आधुनिक कानून के विपरीत है।

इस प्रकार, आधुनिकता एक सार्वभौमिक घटना नहीं है। इसका उद्भव विभिन्न सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के परिणामस्वरुप होता है, जिससे आगे चलकर अनुकूलन एवं अभिव्यक्तियों की बहुलता को बढ़ावा मिलता है।

प्रश्नः सांस्कृतिक बहुलवाद की अवधारणा का भारत की अनेकता में एकता के संदर्भ में परीक्षण कीजिए।

उत्तरः सांस्कृतिक बहुलवाद को एक ऐसी सामाजिक स्थिति के रूप में जाना जाता है, जिसमें विभिन्न सांस्कृतिक समूह एक साथ रहते हैं। यह एक ऐसा सिद्धांत है, जो इस धारणा का समर्थन करता है कि बृहद् समाजों में रहने वाले छोटे समूहों द्वारा विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित किया जाना चाहिए।

- भारत में, 'अनेकता में एकता' का प्रसिद्ध विचार, जो विभिन्न सांस्कृतिक, धार्मिक और भौगोलिक पहचान वाले व्यक्तियों के बीच सद्भाव को दर्शाता है, अक्सर सांस्कृतिक बहुलता को चित्रित करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

'सांस्कृतिक बहुलवाद' और भारत की विविधता में एकता

- भारत की राष्ट्रीय एकता, प्रगति, विकास और अंतरराष्ट्रीय मान्यता सांस्कृतिक बहुलता पर निर्भर है। अपनी विविध भाषाई, सांस्कृतिक और धार्मिक उत्पत्ति के बावजूद भारत के लोग राष्ट्रीय पहचान की साझा भावना से एक साथ जुड़े हुए हैं।
- भारतीय संविधान अल्पसंख्यक समुदायों के सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकारों का संरक्षण करके सांस्कृतिक बहुलता को बनाए रखने का प्रयास करता है। यह सुरक्षा बड़े समुदाय के भीतर छोटे समुदायों को अपनी सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने की क्षमता का विशिष्ट उदाहरण है।
- भारत की सांस्कृतिक बहुलता को यहां के साहित्य, संगीत, नृत्य, वास्तुकला एवं कला की मौलिकता के रूप में देखा जा सकता है। इस समृद्ध विरासत में पारंपरिक संगीत परंपराएं, विविध भजन प्रणालियां तथा शास्त्रीय भारतीय नृत्य शैलियाँ भी शामिल हैं।
- विभिन्न धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोणों के संपर्क में आने से लोगों के बौद्धिक विकास में वृद्धि होती है। इससे लोगों को आलोचनात्मक सोच एवं कौशल विकसित करने, सहानुभूति तथा व्यापक दृष्टिकोण के विकास में मदद मिलती है। सांस्कृतिक बहुलता की संकल्पना लोगों को मानवीय अनुभव की जटिलता को समझने में मदद करती है।
- सांस्कृतिक विविधता भारत की सामाजिक संरचना का एक अनिवार्य घटक है। फिर भी, यहां की सांस्कृतिक विविधता के समक्ष अनेक चुनौतियां हैं। इनमें भाषाई विशिष्टता, अंधराष्ट्रवाद, क्षेत्रवाद तथा समुदायों के भीतर जारी आंतरिक संघर्ष शामिल हैं। इन समस्याओं का समय पर समाधान करते हुए भारत की राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक विविधता को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

जाति व्यवस्था

प्रश्नः जाति व्यवस्था के अध्ययन के गुणारोपणात्मक एवं अंतःक्रियात्मक दृष्टिकोणों के बीच के अंतर का विश्लेषण कीजिए।

उत्तरः जाति व्यवस्था को दो व्यापक दृष्टिकोणों से देखा जाता है- गुणारोपणात्मक दृष्टिकोण और अंतःक्रियात्मक दृष्टिकोण। गुणों को जाति व्यवस्था से जुड़ी अंतर्निहित अविभाज्य विशेषताएं माना जाता है। अंतःक्रियात्मक दृष्टिकोण में इस बात को ध्यान में रखा जाता है कि स्थानीय अनुभवजन्य संदर्भ (Local Empirical Context) में जातियों के स्थान का निर्धारण वास्तव में एक-दूसरे के संबंध में किस प्रकार किया गया है।

गुणारोपणात्मक दृष्टिकोण

- गुणारोपणात्मक दृष्टिकोण एक प्रणाली के रूप में जाति व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं पर ध्यान केंद्रित करता है। साथ ही, इसमें यह भी देखा जाता है कि यह विशेषताएं अन्य सामाजिक स्तरीकरण की संरचनाओं से कैसे भिन्न हैं।
- यह दृष्टिकोण एस. घुर्ये और एम.एन. श्रीनिवास जैसे विद्वानों द्वारा समर्थित है। पदानुक्रम, अंतर्विवाह और पारंपरिक व्यवसाय जैसे अंतर्निहित जाति गुण इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर जाति को परिभाषित करने का प्रयास किया जाता है।

अंतःक्रियात्मक दृष्टिकोण

- यह दृष्टिकोण एक विशिष्ट अनुभवजन्य संदर्भ में जातियों की वास्तविक रैंकिंग (एक से दूसरी जाति के क्रम) पर विचार करता है। जातिगत अंतःक्रियाओं की गतिशीलता तथा जाति व्यवस्था के अंदर परिवर्तनशील प्रक्रियाएं अंतःक्रियात्मक दृष्टिकोण के अनुसंधान के मुख्य विषय हैं।
- इस परिप्रेक्ष्य के अनुसार, जाति व्यवस्था एक खुली प्रणाली के रूप में कार्य करती है, जिसमें व्यक्तियों और समूहों की स्थिति में बदलाव होता रहता है।
- अंतःक्रियात्मक दृष्टिकोण को एफ.जी. बेली एवं एल. ड्यूमॉन्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया है। यह दृष्टिकोण जाति पदानुक्रम के निर्धारण में अनुष्ठानों और धार्मिक मूल्यों की भूमिका पर जोर देता है।

1

प्रथम प्रश्न-पत्र

समाजशास्त्र: विद्याशाखा

प्र. एक शोधकर्ता निर्वचनात्मक (इंटरप्रिटेटिव) शोध में वस्तुनिष्ठता कैसे प्राप्त करता है?
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: सामाजिक विज्ञान के विश्वकोष के अनुसार शोध वस्तुओं अवधारणाओं या प्रतीकों आदि को कुशलतापूर्वक व्यवस्थित करता है, जिसका उद्देश्य सामान्यीकरण द्वारा ज्ञान का विकास प्रमाणिकता की जांच अथवा सत्यापन की जांच होता है चाहे वह ज्ञान व्यवहार में सहायक हो या कला में।

- सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक होती है तथा इसमें निरिक्षण, परिक्षण, तथ्यों के अवलोकन, वर्गीकरण तथा सामान्यीकरण हेतु व्यवस्थित ढंग से वैज्ञानिक पद्धति के सभी चरणों को अपनाया जाता है। सामाजिक शोध में वैज्ञानिक एवं तार्किक पद्धतियों की सहायता से सामाजिक व्यवहार का विश्लेषण करने के पश्चात् सिद्धांतों का निर्माण करने का प्रयास करता है।
- सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता, सत्यापनशिलता, तटस्थता, व्यवस्थितता तथा भविष्योक्ति पर जोर दिया गया है।

सामाजिक शोध के उद्देश्य

- सामाजिक शोध सामाजिक वास्तविकता से सम्बंधित है। अत: इसका उद्देश्य सामाजिक वास्तविकता को यथासंभव वस्तुनिष्ठ एवं क्रमबद्ध रूप में समझना है।
- इसका उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं है अपितु ज्ञान को व्यावहारिक जीवन में पाई जाने वाली समस्याओं के समाधान के लिए प्रयोग में लाना भी है। अत: सामाजिक शोध के निम्नलिखित तीन प्रमुख उद्देश्य हो सकते हैं-

(1) सामाजिक वास्तविकता के बारे में विशुद्ध ज्ञान प्राप्त करना तथा सिद्धांतों का विकास अथवा विस्तार करना,
(2) विशिष्ट समस्याओं का समाधान करना तथा
(3) प्रचलित एवं वर्तमान सिद्धांतों की पुनर्परीक्षण करना।

- वास्तव में सामाजिक शोध का उद्देश्य नवीन तथ्यों की खोज, प्राचीन तथ्यों की नवीन ढंग से विवेचना करते हुए वर्तमान सिद्धांतों की उपयुक्तता का परिक्षण करना तथा उनमें आवश्यक संशोधन करके नवीन सिद्धांतों का निर्माण करना हो सकता है।
- अत: स्पष्ट है कि अनेक विद्वानों ने सामाजिक शोध के उद्देश्यों को सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक उद्देश्यों की दृष्टि से प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष

सामाजिक शोध मानव के सामाजिक जीवन, सामाजिक घटनाओं एवं सामाजिक जटिलताओं के सम्बन्ध में अन्वेषण का एक वैज्ञानिक प्रयास है, जिसका उद्देश्य नवीन ज्ञान प्राप्त करना अथवा विद्यमान ज्ञान का परिष्कार करना है।

- सामाजिक शोध में वैज्ञानिक एवं तार्किक पद्धतियों की सहायता से सामाजिक व्यवहार का विश्लेषण करने के पश्चात् सिद्धांतों का निर्माण करने का प्रयास किया जाता है। इसमें सांख्यिकीय विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है।

प्र. आपके विचार से समाजशास्त्र के उदय में 'प्रबोध' के किन पहलुओं ने मार्ग प्रशस्त किया? विस्तारपूर्वक समझाइये।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: समाजशास्त्र को उनके राजनीतिक निर्णयों, नैतिकता, आर्थिक विकास, धर्म और कानूनों के संदर्भ में समाजों और उनके विकास के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसमें सामाजिक जीवन के रूपों में मानव शरीर के संग्रह शामिल है।

- अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में समाजशास्त्र के उद्भव को प्रभावित करने वाले तीन प्रमुख कारको में फ्रांसीसी क्रांति, 'ज्ञानोदय या प्रबोध' (Enlightenment) और औद्योगिक क्रांति है।
- इस समय यूरोप में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पक्षों के लिए राजनीतिक अर्थतंत्र नामक विषय को अधिक महत्व दिया जाता है, क्योंकि इस विषय से संबधित अध्ययनों ने समाजशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
- 18वीं शताब्दी के यूरोप की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक (प्रबोध) परिस्थितियों ने समाजशास्त्र के उद्भव और विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
- फ्रांस में राज्य क्रांति हुई, कारखानों पर आधारित नवीन अर्थव्यवस्था अस्तित्व में आई, नगरों का विकास हुआ तथा समुदायों के दमनात्मक शक्ति में कमी आई।
- ब्रिटिश समाजशास्त्री बोटमोर के अनुसार 18वीं शताब्दी की बौद्धिक परिस्थितियां समाजशास्त्र के उदय में सहायक प्रमाणित हुई।
- इस समय राजनीतिक दर्शन, इतिहास के दर्शन, सामाजिक-राजनीतिक सुधार आंदोलन तथा सामाजिक सर्वेक्षण विधि के विकास ने समाज के वस्तुनिष्ठ अध्ययन के लिए पृष्ठभूमि तैयार की।

2

समाजशास्त्र: विज्ञान के रूप में

प्र. अन्य सामाजिक विज्ञानों के संबंध में समाजशास्त्र के दायरे में परिसीमित कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: समाजशास्त्री अगस्त कॉम्टे के अनुसार समाज का स्वरूप समग्र है, जिसका अध्ययन अनेक भागों में विभाजित करके नहीं किया जा सकता। सामाजिक विज्ञानों में मानवीय क्रियाओं, समाज और सामाजिक प्रघटनाओं का विश्लेषण एवं व्याख्या की जाती है।

- समाजशास्त्र समाज के किसी विशेष पहलू का अध्ययन न करके सम्पूर्ण समाज का अध्ययन करता है। इसलिए समाजशास्त्र की प्रकृति अन्य विशेष विज्ञानों की तुलना में भिन्न हो जाना स्वाभाविक है।
- सोरोकिन के अनुसार, समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों का जनक नहीं है अपितु उसी प्रकार एक स्वतंत्र विज्ञान है, जिस प्रकार दुसरे सामाजिक विज्ञानों का एक स्वत्रंत अस्तित्व होता है।
- गिलिन के अनुसार, समस्त सामाजिक विज्ञान मुख्य रूप से मानव क्रियाओं और व्यवहारों का उनके सामाजिक समूहों के सदस्य के रूप में अध्ययन करता है। वे आपस में मुख्य रूप से अपनी रुचियों की व्यवस्था के कारण अलग हैं।

समाजशास्त्र का अन्य विज्ञानों से संबंध

- समाजशास्त्र को मनोविज्ञान से जोड़कर देखने से पता चलता है कि इसके अंतर्गत हम सामाजिक सीख, मानव व्यक्तित्व एवं मानव व्यवहार को समाज में रहकर ही सिखते हैं।
- विभिन्न समाज विज्ञानों में से प्रत्येक द्वारा सामाजिक-जीवन के किसी न किसी पहलू का अध्ययन किए जाने के कारण उन सभी में पास्परिक संबंधों का होना स्वाभाविक है।
- प्रत्येक समाज विज्ञान समाज और मानवीय क्रियाओं का एक विशेष दृष्टिकोण से अध्ययन करता है, प्रत्येक का अपना एक विशिष्ट ध्यानबिंदु होता है।
- इस कृति से प्रत्येक सामाजिक विज्ञान की अपनी-अपनी विशिष्ट विषय वस्तु या अध्ययन सामग्री है और प्रत्येक ने अपनी विशेष अध्ययन पद्धतियों को विकसित भी किया है।
- अत: जहां तक समाजशास्त्र का अन्य समाज विज्ञानों के साथ संबंध का प्रश्न है तो यह इन सभी में पारस्परिक आदान-प्रदान है। समाजशास्त्र अन्य समाज विज्ञानों से और अन्य समाज विज्ञान समाजशास्त्र से बहुत कुछ ग्रहण करते हैं।
- विभिन्न समाज विज्ञानों के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बंधित होने के बावजूद समाजशास्त्र का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है।

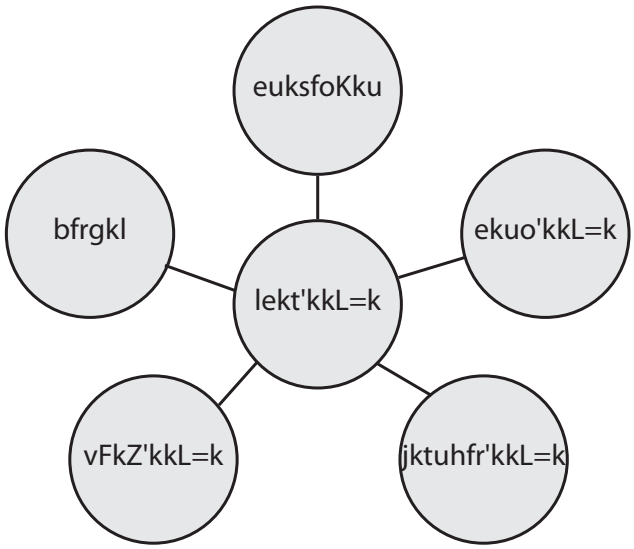

प्र. सामाजिक विज्ञान में सूचना तथा आंकड़ों के बीच अंतर सूक्ष्म है। टिप्पणी कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में सूचना तथा आंकड़ों का महत्वपूर्ण स्थान है। आंकड़े विभिन्न विधियों द्वारा उत्तरदाताओं से संग्रहित की जाने वाली सूचना में प्रतिबिंबित होता है।

- आमतौर पर, ''डेटा'' और ''सूचना'' शब्द का परस्पर उपयोग किया जाता है। हालांकि, दोनों के बीच एक सूक्ष्म अंतर है।
- संक्षेप में, डेटा एक संख्या, प्रतीक, वर्ण, शब्द, कोड, ग्राफ आदि हो सकता है।
- दूसरी ओर, सूचना डेटा को संदर्भ में रखा जाता है। सूचना का उपयोग मानव द्वारा कुछ महत्वपूर्ण तरीके से किया जाता है (जैसे निर्णय लेने, पूर्वानुमान आदि करने के लिए)।
- आंकड़ों के व्यवस्थित सम्बन्ध के आधार को निश्चित कर ही सिद्धांत को प्रतिपादित किया जाता है।
- इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक विधि का प्रयोग कर आंकड़ों का संकलन कारण सामाजिक शोध का एक महत्वपूर्ण कदम है।

3

अनुसंधान पद्धतियां एवं विश्लेषण

प्र. समाजशास्त्री सामाजिक असमानता के विश्लेषण में लिंग (जेंडर) की परिकल्पना कैसे करते हैं?
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: लिंग (जेंडर) असमानता समाज के विभिन्न आयामों में दिखाई पड़ती है। पुरुष तथा नारी विभेद जो कि शक्ति, संपत्ति तथा सम्मान के रूप में समाज में दिखाई देते हैं। समाजशास्त्री समाज में लिंग असमानता को निम्न सन्दर्भों में देखते हैं-

- शिक्षा के क्षेत्र में असमानता
- राजनीति तथा प्रतिनिधित्व के सन्दर्भ में असमानता
- रोजगार तथा अवसरों की असमानता
- हिंसा तथा गैर-बराबरी
- परिवार के सन्दर्भ में संपत्ति के अधिकार के गैर-बराबरी।

लिंग
जैविक लक्षण जो समाज में पुरूष और महिलाओं से जुड़ा है

लैंगिक
स्त्री और पुरूष का सांस्कृतिक अर्थ, जो उनके व्यक्तिगत पहचान को प्रभावित करता है

लैंगिकता
यौन आकषर्ण और पहचान, जो विपरीत लिंग के साथ संरेखित हो भी सकता है और नहीं भी

- विभिन्न लिंगियों के बीच संबंधों के सामाजिक पक्ष के सन्दर्भ में जेंडर (लिंग), जैवकीय यौन भेद (सेक्स) से अलग की जाती है। पिछले कुछ वर्षों में सामाजिक विज्ञानों में लिंग के सामाजिक पक्ष को उसके जैवकीय पक्ष से अलग कर जेंडर के रूप में उसे समझाने का प्रयास किया गया है।
- अन्न ओकले के अनुसार, लैंगिकता का तात्पर्य पुरुषों एवं स्त्रियों का जैवकीय विभाजन से है तथा जेंडर का अर्थ स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व के रूप में सामानांतर और सामाजिक रूप में असमान विभाजन से है।
- अत: जेंडर की अवधारणा स्त्रियों और पुरुषों के बीच सामाजिक रूप में निर्मित भिन्नता के पहलुओं पर ध्यान आकर्षित करती है।
- आजकल जेंडर का प्रयोग व्यक्तिगत पहिचान और व्यक्तित्व को इंगित करने के लिए नहीं किया जाता, अपितु प्रतीकात्मक स्तर पर इसका प्रयोग सांस्कृतिक आदर्शों तथा पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व संबंधी रुधिबद्ध धारणाओं तथा संरचनात्मक अर्थों में, संस्थाओं और संगठनों में लैंगिक श्रम-विभाजन के रूप में भी किया जाता है।
- विभिन्न समाजों में लैंगिक संबंधों के भिन्न रूप-स्वरुप हैं। सामाजिक जीवन के कई क्षेत्रों में लिंग भेद की रचना और अभिव्यक्ति की जाती है। यह संस्कृति, विचारधारा और तार्किक धारणाओं तक ही सीमित नहीं है। घर में लैंगिक श्रम-विभाजन से लेकर श्रम बाजार तक, राज्य की व्यवस्था में, हिंसा की रचना में और सामाजिक संगठन के कई पक्षों में लैंगिक संबंधों की रचना होती है।

निष्कर्ष

वर्तमन में भारतीय समाज में नए-नए कानूनों के मध्यम से महिला प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करना, शिक्षा के अधिकार को मूलभूत अधिकार बनाकर कानून का निर्माण करना, यौन उत्पीडन के विरुद्ध तथा घरेलू हिंसा के विरुद्ध कानून का निर्माण करना आदि विभिन्न आयामों में लिंग असमानता को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है।

प्र. समाजशास्त्री समावेशी विकास के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लोकतंत्रीकरण का तर्क देते हैं। टिप्पणी कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: विज्ञान और प्रौद्योगिकी का लोकतंत्रीकरण, विज्ञान के विषय में विभिन्न निर्णयों को शामिल करने के लिए लोकतांत्रिक नियंत्रण के दायरे का विस्तार करता है।

- यह ''विशेषज्ञता का लोकतांत्रीकरण'' करने के प्रयासों को शामिल करता है, जो ''विशेषज्ञता'' के विभिन्न रूपों को पहचान कर वैज्ञानिकों और आम लोगों के बीच की सीमाओं को कम करता है। लोकतंत्रीकरण की एक राजनीतिक भावना भी है।
- सामाजिक जीवन का एक क्षेत्र लोकतांत्रिक रूप से शासित होता है, जब सभी संबंधित पक्षों को अपनी प्राथमिकताओं, रुचियों और मूल्यों की उचित विकास करने के समान अवसर मिलते हैं। तदनुसार, विज्ञान का लोकतंत्रीकरण संदर्भित करता है कि-

(1) विज्ञान के विभिन्न पहलुओं पर जनता के प्रभाव में वृद्धि
(2) जनता के सदस्यों के बीच प्रभाव के अवसर की समानताय तथा
(3) उन स्थितियों की प्राप्ति, जो जनता के सदस्यों को उनके हितों और मूल्यों की उचित विकास करने में सक्षम बनाती हैं।

4

समाजशास्त्री चिंतक

प्र. दुर्खीम ने तर्क दिया कि समाज व्यक्तिगत कृत्यों के योग से अधिक है। चर्चा कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: एमिल दुर्खीम के अनुसार समाज 'अपने व्यक्तिगत भागों के योग से अधिक' है। दुर्खीम का मानना है कि व्यक्तिगत क्रिया सामाजिक संरचना से बहुत अधिक आकार लेती है।

- दुर्खीम की 'होलिस्ट प्रोजेक्ट' (Holist Project) का दावा है कि समाज के भीतर ऐसे 'सामाजिक तथ्य' हैं, जो व्यक्ति के लिए बाहरी हैं, और व्यक्ति के लिए कम नहीं हैं।
- दुर्खिम के अनुसार सामाजिक तथ्य 'अनुरूपता; सामूहिक व्यवहार और अभिनय, सोच और भावना के सामूहिक तरीके को दर्शाते हैं।
- दुर्खीम व्यक्ति के स्तर से परे सामाजिक कार्य-कारण के अस्तित्व को स्थापित करने का प्रयास करता है, जैसा कि खुद दुर्खीम ने उद्धृत किया है, ''व्यक्ति पर एक नैतिक वास्तविकता का प्रभुत्व है, जो उसे पार करती है-एक सामूहिक वास्तविकता''।
- दुर्खीम का यह भी मानना था कि सामाजिक एकीकरण, या लोगों के अपने सामाजिक समूहों के साथ संबंधों की ताकत, सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण कारक था।
- कॉम्टे और स्पेंसर (Comte and Spencer) के विचारों के बाद, दुर्खीम ने समाज की तुलना एक जीवित जीव से की, जिसमें प्रत्येक अंग जीवित रहने में एक आवश्यक भूमिका निभाता है। यहां तक कि समाज के सामाजिक रूप से विचलित सदस्य भी आवश्यक हैं, दुर्खीम ने तर्क दिया, क्योंकि विचलन के लिए दंड स्थापित सांस्कृतिक मूल्यों और मानदंडों की पुष्टि करता है। यानी अपराध की सजा हमारी नैतिक चेतना की पुष्टि करती है।
- दुर्खीम ने 1893 में लिखा था कि ''अपराध एक अपराध है क्योंकि हम इसकी निंदा करते हैं,''। ''एक कार्य सामान्य चेतना को ठेस पहुंचाता है क्योंकि यह आपराधिक नहीं है, बल्कि यह आपराधिक है क्योंकि यह उस चेतना को ठेस पहुंचाता है''।
- दुर्खीम ने समाज के इन तत्वों को ''सामाजिक तथ्य'' कहा है। इससे उनका तात्पर्य यह था कि सामाजिक शक्तियों को वास्तविक माना जाना चाहिए और व्यक्ति के बाहर मौजूद होना चाहिए।

निष्कर्ष

दुर्खीम ने समझाया कि पूर्व-औद्योगिक समाज यांत्रिक एकजुटता, श्रम के न्यूनतम विभाजन और एक सामान्य सामूहिक चेतना के माध्यम से बनाए रखा गया एक प्रकार का सामाजिक आदेश द्वारा एक साथ रखा गया था।

- ऐसे समाजों ने निम्न स्तर की व्यक्तिगत स्वायत्तता की अनुमति दी। अनिवार्य रूप से व्यक्तिगत अंत:करण और सामूहिक अंत:करण के बीच कोई अंतर नहीं था।
- यांत्रिक एकजुटता वाले समाज एक यांत्रिक फैशन में कार्य करते हैंय चीजें ज्यादातर इसलिए की जाती हैं क्योंकि वे हमेशा इसी तरह से की जाती रही हैं।

प्र. प्रत्यक्षवादी दर्शन की वो कौन सी कमियां हैं जो सामाजिक यथार्थता के अध्ययन में अप्रत्यक्षवादी पद्धतियों को जन्म देती हैं? (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: जब विद्वानों ने यह महसूस किया कि समाजशास्त्रीय मुद्दों को केवल निश्चित कानूनों का उपयोग करके संबोधित नहीं किया जा सकता है, तो वे प्रत्यक्षवाद से गैर-प्रत्यक्षवाद में बदल गए। जबकि प्रत्यक्षवादी पद्धतियों ने समाज को और मनुष्य को उसके नियमों द्वारा शासित होने के रूप में देखा।

- दूसरी ओर गैर-प्रत्यक्षवादियों ने मनुष्य को स्वतंत्र सोच वाला व्यक्ति माना जो समाज को भी प्रभावित कर सकता है। उन्होंने मनुष्य की अति-सामाजिक अवधारणा को खारिज कर दिया। इस प्रकार, गैर-प्रत्यक्षवादी पद्धतियों ने यह पता लगाने की कोशिश की कि मनुष्य के दिमाग में क्या चल रहा है और यह समाज को कैसे प्रभावित करता है।
- औपचारिक अनुशासन के रूप में समाजशास्त्र की स्थापना से पहले भी, ऐसे विचार 18 वीं शताब्दी के अंत में प्रचलित थे जब जर्मन 'आदर्शवादी' स्कूल ने सामाजिक वास्तविकता को अलग तरह से परिभाषित करने का प्रयास किया था।
- डिल्थे और रिकर्ट जैसे विद्वानों ने प्राकृतिक और सामाजिक दुनिया के बीच अंतर पर प्रकाश डाला। उनके अनुसार सामाजिक दुनिया अर्थ, प्रतीकों और उद्देश्यों के संदर्भ में मानव समाज की विशिष्टता पर आधारित है।

5

स्तरीकरण एवं गतिशीलता

प्र. खुली तथा बंद व्यवस्था में सामाजिक गतिशीलता की विवेचना कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: सामाजिक गतिशीलता का अर्थ, व्यक्तियों का किसी एक सामाजिक स्थिति से दूसरी सामाजिक स्थिति में संचलन से है। सामाजिक गतिशीलता की संकल्पना की आदर्श परिभाषा पिटरीम ए. सोरोकिन (Pitrim A. Sorokin) द्वारा दी गई है।

- सोरोकिन के अनुसार, सामाजिक स्थितियों में परिवर्तन एक व्यक्ति, सामाजिक उद्देश्य या सामाजिक मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों द्वारा समझा जा सकता है।
- समाजशास्त्र में एक संकल्पना के रूप में सामाजिक गतिशीलता का महत्व एकदम स्पष्ट है। किसी व्यक्ति अथवा समूह द्वारा समाज की स्थिति में अनुभव किया गया कोई परिवर्तन न केवल उस व्यक्ति या समूह पर प्रभाव डालता है बल्कि सम्पूर्ण समाज पर भी उसका प्रभाव पड़ता है।
- सामाजिक स्थिति पर प्रभाव डालने में लगने वाला समय अलग-अलग समाज में अलग-अलग होता है।

सामाजिक गतिशीलता का प्रकार

समस्तर गतिशीलता : किन्हीं व्यक्तियों या समूहों द्वारा किसी समाज में एक स्थिति से ऐसी दूसरी स्थिति में जाना जो स्तर में उच्च या निम्न न हो।

- अमेरिकी समाज के सन्दर्भ में बैपटिस्ट धार्मिक समूह से मैथोडिस्ट धार्मिक समूह में व्यक्तियों का गमन एक नागरिकता से दूसरी नागरिकता, तलाक या पुनर्विवाह के द्वारा एक परिवार से दुसरे परिवार, एक कारखाने से उसी व्यावसायिक स्तर पर दुसरे कारखाने में जाना आदि सभी सम-स्तर सामाजिक गतिशीलता है।

उर्ध्व गतिशीलता : समाजशास्त्र के साहित्य में उर्ध्व गतिशीलता पर अत्यधिक ध्यान दिया गया है। साधारणत: किसी व्यक्ति या समूह के स्तर में ऊपर या नीचे की तरफ होने वाले परिवर्तन पर है।

- पी. सोरोकिन उर्ध्व सामाजिक गतिशीलता को किसी व्यक्ति का एक सामाजिक स्तर से दुसरे सामाजिक स्तर में संचलन हो।

परिवर्तित पारस्परिक गतिशीलता और अंत: पारंपरिक गतिशीलता

सामाजिक गतिशीलता के अध्ययन के दो विधियां हैं। एक तो कोई भी व्यक्ति इस बात का अध्ययन कर सकता है कि एक व्यक्ति अपने कार्य जीवन के दौरान अपने व्यवसाय में सामाजिक मानदंड के अनुसार कितना ऊपर या नीचे जाता है। इसे प्राय: परिवर्तित पारंपरिक गतिशीलता कहा जाता है।

- किसी व्यक्ति के जीवन काल में परिवर्तनों के किसी एक बिंदु से किया गया अध्ययन परिवर्तित पारंपरिक गतिशीलता के अध्ययन का विषय है। यदि अध्ययन दो या तीन पीढ़ी के बाद परिवार में हुए परिवर्तन के किसी एक बिंदु से किया जाए तो यह अंत: पारंपरिक गतिशीलता का विषय है।

बंद तथा खुले व्यवस्था में गतिशीलता :

- सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन अनिवार्य रूप से समाज के खुलेपन और संकीर्णता के प्रश्न पैदा करता है। यदि किसी समाज की श्रेणीकृत संरचना में किसी संचलन की अनुमति नहीं है तो उसमें गतिशीलता संभव नहीं है।
- दूसरी तरफ जो समाज लचीला होता है उसमें गतिशीलता आसानी से हो जाती है।
- बंद या संकीर्ण समाज में उर्ध्व गतिशीलता न के बराबर संभव है। कोलंबिया और भारत में आधुनिकता से पूर्व कमोबेश समाज इसी प्रकार के थे।
- इसके विपरीत एक मुक्त (खुले) समाज में अधिक उर्ध्व सामाजिक गतिशीलता होती है। फिर भी खुले समाज में लोग एक स्तर से दुसरे स्तर में बिना प्रतिरोध के नहीं जा सकते हैं।
- अधिकांश मुक्त समाजों में उच्च औद्योगिकरण की प्रवृत्ति होती है। ज्यों-ज्यों समाज औद्योगिक होता जाता है नए शिल्प और व्यवसाय आवश्यक हो जाते हैं। इसी कारण पीछे वाले कार्य अनावश्यक हो जाते हैं।
- इसके अतिरिक्त शहरीकरण से उर्ध्व गतिशीलता में वृद्धि होती है, क्योंकि आरोपित मानदंड शहर के पहचान रहित वातावरण में कम महत्वपूर्ण हो जाते हैं। लोग उपलब्धिपरक, प्रतिस्पर्धात्मक तथा अच्छी स्थिति के लिए प्रयास करते हैं।
- वास्तव में गतिशीलता से व्यावसायिक ढांचे में परिवर्तन, मध्य और उच्च वर्ग के व्यवसायों की श्रेणी और अनुपात में वृद्धि तथा निचली श्रेणी के व्यवसायों में कमी हो जाती है। समाज के व्यावसायिक ढांचे में परिवर्तन से उत्पन्न गतिशीलता को संरचनात्मक गतिशीलता कहा जाता है।

6

कार्य एवं आर्थिक जीवन

प्र. 'घर से काम करने' के विचार ने हमें काम के औपचारिक और अनौपचारिक संगठन को पुनः परिभाषित करने के लिए कैसे मजबूर किया है?

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: 'घर से काम करने' (Work from Home) का अर्थ एक ऐसी स्थिति से है जब कोई कर्मचारी कार्यालय (Office) से काम करने के स्थान पर अपने घर, अपार्टमेंट अथवा निवास स्थान से कार्य करता है।

कुछ कंपनियां पहले से ही 'घर से काम करने' की नीति का पालन कर रही थी जो अपने कर्मचारियों को ऐसा करने की अनुमति देती थी। कर्मचारी इन कंपनियों में पूर्णकालिक अथवा आवश्यकता पड़ने पर कार्य की सुविधा के अनुसार घर से कार्य करते थे। किंतु, कोविड-19 महामारी काल में यह एक अनिवार्य घटक बनकर सामने आया।

'घर से कार्य करने' की स्थितियां केवल अर्थव्यवस्था के सर्विस सेक्टर में ही संभव हैं। मैन्युफैक्चरिंग और कंस्ट्रक्शन क्षेत्रों में 'वर्क फ्रॉम होम' संभव नहीं है।

वर्क फ्रॉम होम के कारण अनेक मामलों में अनौपचारिक कार्यों में वृद्धि तथा औपचारिक कार्यों में कमी देखने को मिली। ऐसा संस्थाओं एवं संगठनों द्वारा अपनाए गए गैर-ट्रेड यूनियनवाद (Trade Unionism), भौतिक संपर्क में कमी करने तथा लागत में कटौती करने के कारण हुआ है। उपर्युक्त परिस्थितियों के कारण, संगठनों के लिए लोगों को काम पर रखने एवं उन्हें निकालना अधिक आसान हो गया है। उदाहरण के लिए, बेटर डॉट कॉम (Better.com) नामक कंपनी ने जूम कॉल पर अपने 900 कर्मचारियों को नौकरी से निकाल दिया था।

नौकरियों में अनिश्चितता के कारण वर्क फ्रॉम होम के साथ-साथ अन्य अनौपचारिक क्षेत्रों जैसे गिग वर्क (Gig-Work) तथा प्लेटफॉर्म वर्क (Platform work) आदि का विस्तार हुआ है।

अर्थव्यवस्था के अनेक अनौपचारिक क्षेत्रों एवं इकाइयों को बंद करना पड़ा क्योंकि उनमें वर्क फ्रॉम होम की अवधारणा लागू नहीं होती है। इन इकाइयों की साख क्षमता (Credit Cpacity) अत्यंत कम होती है। सामान्य रूप से इनमें गरीब व्यक्ति, महिलाएं तथा निचले वर्गों के लोग कार्य करते हैं।

औपचारिक क्षेत्रों की अवधारणा आमतौर पर औद्योगिक एवं कॉर्पोरेट सेक्टर से संबंधित है। दूसरी तरफ, 'घर पर कार्य करने' को प्राचीन अर्थव्यवस्था के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार के कार्य मुख्य रूप से अनौपचारिक गतिविधियों से संबंधित होते हैं जिनमें कपड़ों के सिलाई तथा चूड़ियों के निर्माण जैसे कार्य किए जाते हैं। हालांकि, कोविड-19 महामारी काल में 'वर्क फ्रॉम होम' की बढ़ती मांग के कारण उपर्युक्त अवधारणा में व्यापक परिवर्तन देखने को मिले हैं।

इस प्रकार, कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में कार्य को औपचारिक तथा अनौपचारिक क्षेत्र में वर्गीकृत करने के पुरानी मापदंडों में परिवर्तन आया है। कोविड-19 महामारी ने वैश्विक स्तर पर इस प्रकार के परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

प्र. हाल ही में 'लॉकडाउन अवधि' के दौरान प्रवासी श्रमिकों के सामने आई मुख्य समस्याओं और चुनौतियों की विशद व्याख्या कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: लोगों का आपने सामान्य निवास स्थान से अन्य स्थान पर आवागमन प्रवास कहलाता है। यह आंतरिक (देश के अंदर) अथवा अंतरराष्ट्रीय हो सकता है (विभिन्न देशों के मध्य)। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में 45.6 करोड़ प्रवासी (जनसंख्या का 38 प्रतिशत) थे।

कोविड-19 महामारी के परिणामस्वरूप लॉकडाउन विधि का प्रयोग किया गया। ऐसी स्थितियों में, आर्थिक गतिविधियां तथा आवागमन को पूर्ण रूप से निलंबित कर दिया गया था। यात्री ट्रेनों एवं उड़ानों पर लगाई जाने वाली रोक लॉकडाउन के प्रमुख कदमों में से एक थे। लॉकडाउन के व्यापक प्रतिकूल प्रभाव प्रवासी कामगारों देखने को मिले।

औद्योगिक क्षेत्र एवं उद्योगों के बंद होने के कारण अनेक श्रमिकों को नौकरी से निकाल दिया गया तथा वे अपने मूल स्थान से दूर फंस गए थे। भूख और मौत के डर से श्रमिकों को पैदल ही अपने गांव वापस जाने के लिए मजबूर होना पड़ा।

समाजशास्त्री दीपांकर गुप्ता के अनुसार, लॉकडाउन के समय प्रवासी श्रमिक केवल इसलिए अपने गांव वापस नहीं जाना चाहते थे कि उन्हें वहां भौतिक सहायता प्राप्त हो सकेगी। बल्कि, वे चाहते थे कि यदि उनकी मृत्यु हुई हो तो वह सगे-संबंधियों के बीच में हो जिससे चौथ एवं श्राद्ध जैसे धार्मिक संस्कार पूर्ण हो सके। इन संस्कारों को भारतीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्होंने इस घटना को 'घरेलू रस्मों की खींचतान' (Ritual Tug of Home) कहा है।

7

राजनीति और समाज

प्र. सामाजिक नीतियों के निरूपण में दबाव समूहों की भूमिका को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: दबाव समूह उन लोगों का एक समूह है, जो अपने सामान्य हितों को बढ़ावा देने और बचाव के लिए सक्रिय रूप से संगठित होते हैं। इसे ऐसा इसलिए कहा जाता है, क्योंकि यह सरकार पर दबाव डालकर सार्वजनिक नीति में बदलाव लाने का प्रयास करते हैं। यह सरकार और उसके सदस्यों के बीच एक संपर्क के रूप में कार्य करता है।

- दबाव समूहों राजनीतिक दलों से अलग हैं, क्योंकि वे न तो चुनाव लड़ते हैं और न ही राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करने की कोशिश करते हैं। वे विशिष्ट कार्यक्रमों और मुद्दों से संबंधित हैं और उनकी गतिविधियां सरकार को प्रभावित करके अपने सदस्यों के हितों की सुरक्षा और संवर्धन तक ही सीमित हैं।
- दबाव समूह सरकार में नीति-निर्माण और नीति कार्यान्वयन को कानूनी और वैध तरीकों जैसे लॉबिंग, पत्राचार, प्रचार, याचिका, सार्वजनिक बहस, अपने विधायकों के साथ संपर्क बनाए रखने आदि के माध्यम से प्रभावित करते हैं।

दबाव समूह के प्रकार:

दबाव समूह दो प्रकार के होते हैं:

- **अनुभागीय (Sectional) :** इस प्रकार के दबाव समूह में स्व-हित संगठन जैसे ट्रेड यूनियन, व्यवसाय और कृषि समूह शामिल हैं।
- **प्रचार (Promotional) :** प्रचार हित समूह एक विशेष कारण पर ध्यान केंद्रित करते हैं और अपनी गतिविधियों को उस कारण को पूरा करने की दिशा में निर्देशित करते हैं, उदाहरण के लिए, महिलाओं के अधिकार, नैतिक अधिकार।

दबाव समूह द्वारा प्रयोग की जाने वाले तकनीक :

सरकार के फैसलों को प्रभावित करने के लिए दबाव समूहों द्वारा आमतौर पर प्रयोग की जाने वाली कुछ तकनीकें निम्न है :

चुनाव के माध्यम : इस पद्धति में, वे प्रमुख सार्वजनिक कार्यालयों में अपने मुद्दों के पक्ष में प्रतिनिधियों को रखते हैं।

लामबंद (पक्ष जुटाना) करना : यह विधि सार्वजनिक अधिकारियों को ऐसी नीतियों को अपनाने और लागू करने के लिए आश्वस्त करती है, जो उनके हितों को लाभ पहुंचाएगी।

मुद्दे को उछालना (Propagandizing) : इसमें जनमत को अपने पक्ष में प्रभावित करना और सरकार पर उनके हितों को स्वीकार करने के लिए दबाव डालना शामिल है, क्योंकि लोकतंत्र में, जनता की राय को संप्रभु माना जाता है।

न्यायपालिका से अपील : न्यायपालिका से अपील करके कानूनी कार्रवाई का सहारा लेना।

उम्मीदवार के पक्ष में प्रचार या विरोध करना : किसी विशेष उम्मीदवार के पक्ष में प्रचार करना या किसी उम्मीदवार का विरोध करना।

विरोध का आयोजन : हित समूह विरोध प्रदर्शन, रैलियां, अभियान भी आयोजित करते हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से सरकार पर दबाव डालते हैं और लोगों की मांगों पर विचार करने के लिए उन्हें बाध्य करते हैं।

मीडिया : हाल के वर्षों में, दबाव समूहों ने भी लोगों के सामने अपना मामला पेश करने और जनमत को अपने पक्ष में रखने के लिए मास मीडिया की मदद ली है, क्योंकि लोकतंत्र में जनता की राय हमेशा एक संपत्ति होती है।

नीतियों के निरूपण में दबाव समूह की भूमिका :

किसी भी लोकतांत्रिक प्रथाओं में, दबाव समूह या हित समूह सार्वजनिक नीतियों को निर्धारित करने और प्रभावित करने में स्पष्ट रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

- प्रतिनिधित्व की शासन प्रणाली का एक अविभाज्य अंग होने के नाते, दबाव समूहों का कहना है कि लोकतांत्रिक लेन-देन में नीति निर्माण की प्रक्रिया में एक बड़ा हाथ होता है, जिसमें वे उन विचारों को शुरू करते हैं जो अंतत: सार्वजनिक नीतियों में अपनी प्रतिध्वनि पाते हैं।
- संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन और भारत जैसे दुनिया के सबसे बड़े और सबसे स्थिर लोकतंत्रों में दबाव समूहों की कानूनी प्रक्रिया में प्रत्यक्ष भागीदारी और हस्तक्षेप संवैधानिक रूप से अनुमत प्रथाएं हैं।
- अमेरिकी लोकतंत्र में बहुचर्चित लॉबिंग संस्कृति, भारी आलोचना और विवादों के बावजूद, अमेरिकी अदालतों द्वारा संवैधानिक रूप से संरक्षित मुक्त भाषण के रूप में व्याख्या की गई है।
- यह दबाव समूहों की नीति-निर्माण की विधायी प्रक्रिया तक सीधी पहुंच का एक व्यावहारिक उदाहरण है।

8

धर्म एवं समाज

प्र. समकालीन समाज में धर्म संबंधित दुर्खीम के विचारों की प्रासंगिकता का समालोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: इमाइल दुर्खीम ने धर्म के समाजशास्त्र में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने धर्म के उद्‌गम का विश्लेषण किया और मानव समाज में उसका कार्यभाग बतलाया। धर्म के सम्बन्ध में इमाइल दुर्खीम की सन 1912 में प्रकाशित धार्मिक जीवन के प्रारंभिक रूप 'The Elementary Forms of Religious Life' शीर्षक पुस्तक उल्लेखनीय है।

- दुर्खीम ने धर्म के उद्‌गम के विषय में अन्य विद्वानों द्वारा दी गई व्याख्याओं का खंडन किया। वे धर्म की व्याख्या पवित्र वस्तुओं से सम्बंधित विश्वासों और व्यहारों की एक समन्वित व्याख्या के रूप में करते हैं।
- दुर्खीम ने धर्म की प्रचलित अवधारणाओं की आलोचना की है। उसने स्वीकार किया है कि अलौकिक शक्ति में विश्वास को ही धर्म कहा जाता है। सामान्यत: इस अलौकिक शक्ति को ईश्वर के नाम से जाना जाता है।
- दुर्खीम ने धर्म को सामाजिक घटना माना है। इसलिए इसकी विवेचना समाजशास्त्रीय आधार पर प्रस्तुत की है। दुर्खीम के अनुसार "धर्म एक पवित्र वस्तुओं से सम्बंधित विश्वासों एवं क्रियाओं की एक संकलित व्यवस्था है, अर्थात जो पृथक और निषिद्ध होती है- वे विश्वास और आचारण जिनको सभी मानते हैं, जो एक नैतिक समुदाय के रूप में संगठित होते हैं और जिसे हम चर्चा करते हैं। दूसरा तत्व जिसका इस प्रकार हमारी विशेषता में स्थान है, प्रथम से कम आवश्यक नहीं है, यह दिखाने से कि धर्म का विचार चर्च से पृथकनीय नहीं है, यह इसे स्पष्ट कर देता है कि धर्म प्रमुख रूप से एक सामूहिक वस्तु होना चाहिए।"
- दुर्खीम के मतानुसार मनुष्य का समाज और ईश्वर दोनों ही के प्रति समान मनोवृत्ति होती है। समाज अपने सदस्यों के मस्तिष्क में देवत्व की चेतना जागृत करने में अति सक्षम है, क्योंकि इसका उन पर अधिकार होता है। ईश्वर की ही भांति समाज पर भी व्यक्ति एक निरंतर निर्भरता की भावना रखता है।
- ईश्वर की ही भांति समाज के पास नैतिक सत्ता होती है, जिससे वह लोगों में नि:स्वार्थ भक्ति और आत्म त्याग को जागृत कर सकता है। इसमें व्यक्ति को असाधारण शक्ति प्रदान करने की सामर्थ्य है और वह सभी का मूल स्त्रोत है, जो मानव व्यक्तित्व के लिए सर्वोत्तम तथा सर्वोच्च है। अत: जो धार्मिक मनुष्य किसी बाह्य नैतिक शक्ति पर विश्वास करता है वह किसी प्रकार के भ्रम में नहीं है क्योंकि इस प्रकार की शक्ति या सत्ता का अस्तित्व 'शक्ति और समाज' है।
- दुर्खीम की धर्म की अवधारणा की आलोचना करते हुए रेमंड आरन ने कहा है "मुझे संदेह है कि यह धर्म की किसी भी परिष्कृत व्याख्या के विषय में कहा जा सकता है। किसी भी मामले में, एक विशुद्ध रूप से मानवीय अवधारणा में, नैतिक मूल्य मानवता की सृष्टि है।
- मनुष्य पशु जाति का एक प्रकार है, जो कि क्रमश: मानवता पर आरोहण करता है। यह भावना कि कोई ऐसी वस्तु है, जिसका आर्तरिक मूल्य है, धर्म के अर्थ को ही बिगाड़ देना है अथवा मानव नैतिकता के अर्थ को अनर्थ कर देता है।
- दुर्खीम ने यह माना है कि समाज और दिव्य तत्व की तुलना की जा सकती है और उन्हें प्रत्यक्ष की वस्तुएं माना जा सकता है।
- इस अवधारणा में दोष यह है कि ईश्वर के नाम पर राष्ट्रीय एकता को बनाए रखते हुए राष्ट्र पूजा की ओर ले जा सकता है, जिसका परिणाम नाजीवाद और फत्सिवाद के रूप में क्रमश: जर्मनी और इटली में तानाशाहियों के विकास में देखा जा सकता है।

निष्कर्ष

वास्तव में दुर्खीम विज्ञान और धर्म के अंतर को भूल जाते हैं। इन दोनों में बाह्य समानताएं होने के बावजूद विज्ञान का सम्बन्ध तथ्यों से है, जबकि धर्म का सम्बन्ध तथ्यों से न होकर मूल्यों से होता है। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि इमाइल दुर्खीम ने आधुनिक मानव चेतना के अनुरूप धर्म की एक अधिक विवेकयुक्त अवधारणा उपस्थित करने का प्रयास किया है।

प्र. धर्मनिरपेक्षता के वैश्विक प्रवृत्तियों पर टिप्पणी लिखिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: ब्रूस का तर्क है कि धर्म की बढ़ती विविधता के परिणामस्वरूप धर्मनिरपेक्षता होती है, क्योंकि कोई एक धर्म नहीं है, धर्म अब व्यक्तियों को समाज से पहले की तरह नहीं बांधता है।

9

नातेदारी की व्यवस्थाएं

प्र. परिवार पर विभिन्न सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों की चर्चा कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: समाजशास्त्र कई लेंसों के माध्यम से परिवार की सामाजिक संस्था को देखता है, लेकिन इसके तीन प्रमुख सैद्धांतिक आधार हैं कार्यात्मकता, संघर्ष सिद्धांत और प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद। परिवार को एक सामाजिक संस्था के रूप में समझने के लिए इन सिद्धांतों में अलग-अलग दृष्टिकोण हैं।

कार्यात्मकता : कार्यात्मकता एक दृष्टिकोण है जो समाज को एक सामाजिक संतुलन, या संतुलन बनाए रखने के लिए मिलकर काम करने वाले भागों की एक प्रणाली के रूप में देखता है। कार्यात्मक दृष्टिकोण से परिवार के कई कार्य हैं।

- एक प्रमुख कार्य बच्चों का सामाजिककरण करना है। समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से, बच्चे अपने समाज के मानदंडों, नियमों और मूल्यों को सीखते हैं और समाज के सदस्यों के रूप में आकार लेते हैं। परिवार समाज के सदस्यों को उनकी सामाजिक पहचान को आकार देने में भी मदद करता है। परिवारों का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य यौन प्रजनन को विनियमित करना है।

संघर्ष सिद्धांत : संघर्ष सिद्धांत यह मानता है कि समाज सामाजिक समूहों के बीच संघर्ष की विशेषता है। असमान शक्ति और प्रतिस्पर्धी हितों वाले समूह दुर्लभ संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। संघर्ष सिद्धांतकार यह देखते हैं कि संरचनात्मक असमानताओं को बनाए रखने के लिए परिवार समाज के भीतर कैसे कार्य करते हैं।

- संघर्ष सिद्धांत उन तरीकों पर विचार करता है जो विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच संघर्ष और प्रतिस्पर्धा पूरे समाज को आकार देते हैं।
- यह परिप्रेक्ष्य बताता है कि पारिवारिक संरचना सामाजिक असमानता में योगदान करती है क्योंकि यह पितृसत्तात्मक मूल्यों को मजबूत करके आर्थिक और लैंगिक असमानता का समर्थन करती है।

प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद : प्रतीकात्मक अंत:क्रियावाद सामाजिक व्यवहार का एक दृष्टिकोण है जो व्यक्तिपरक समझ और व्यक्ति और समाज की बातचीत पर जोर देता है।

- यह दृष्टिकोण उन लिपियों का विश्लेषण करता है जो एक समाज परिवारों से प्रदान करता है या अपेक्षा करता है। पारंपरिक परिवार कैसा दिखता है, इसके लिए प्रत्येक समाज या समुदाय की एक निश्चित लिपि होती है।
- नए पारिवारिक रूपों को विचलित माना जाता है, इसलिए नहीं कि वे खराब हैं, बल्कि इसलिए कि वे संख्या में कम हैं और उन तरीकों से काम नहीं कर सकते हैं जिनमें कई आरामदायक हैं।

प्र. पितृतंत्र तथा सामाजिक विकास के संबंध को आप कैसे समझते हैं? (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: पितृसत्ता सामाजिक असमानता की सबसे कम देखी जाने वाली अभी तक की सबसे महत्वपूर्ण संरचना है''।

- पितृसत्ता एक सार्वभौमिक घटना है। पितृसत्तात्मक आधार पर व्यवस्थित और संरचित समाजों या समुदायों में पितृसत्ता की अभिव्यक्तियां स्पष्ट हैं। वह प्रणाली जहां पिता या सबसे बड़ा पुरुष परिवार का नेतृत्व करता है और परिवार के संदर्भ में किसी व्यक्ति की उत्पत्ति को पुरुष रेखा, आमतौर पर पृष्ठभूमि के माध्यम से माना जाता है। और जटिल व्यवस्था जहां पुरुष सत्ता पर कब्जा रखते हैं और महिलाओं को इसके उपयोग से काफी हद तक वंचित कर दिया जाता है। पितृसत्ता समाज और सरकार दोनों के संरचनात्मक ढांचे में खुद को प्रकट करती है।
- महिलाओं का सशक्तिकरण पितृसत्ता के विश्वास और व्यवहार से जुड़ा हुआ है, जो राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तरों पर महिलाओं को अपने अधीन करता है।
- पितृसत्ता एक सामाजिक और वैचारिक निर्माण है, जो पुरुषों (जो पितृसत्ता हैं) को महिलाओं से श्रेष्ठ मानता है। पितृसत्ता समाज में पुरुषत्व और स्त्रीत्व चरित्र की रूढ़ियों को थोपती है, जो पुरुषों और महिलाओं के बीच अन्यायपूर्ण शक्ति संबंधों को मजबूत करती है।
- नारीवाद महिलाओं के श्रम, प्रजनन क्षमता और कामुकता के भौतिक और वैचारिक स्तरों पर पितृसत्तात्मक नियंत्रण, शोषण और उत्पीड़न, कार्रवाई के बारे में जागरूक है। पितृसत्ता के विश्वास और अभ्यास पर काबू पाने को पूर्व संध्या सशक्तिकरण कहा जाता है।
- लैंगिक असमानताओं की वस्तुगत वास्तविकता श्रम विभाजन और जैविक छवि के अस्तित्व को दर्शाती है।
- धन, शक्ति और विशेषाधिकार के मामले में पुरुषों और महिलाओं की विभिन्न असमान स्थितियों के आधार पर समाज का यह विभाजन दो लिंगों के बीच आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को उजागर करने वाले लिंग स्तरीकरण का मार्ग प्रशस्त करता है।

10

आधुनिक समाज में सामाजिक परिवर्तन

प्र. विकासशील समाजों के कार्यक्षेत्रों में नारी की उपस्थिति में वृद्धि के आशय की व्याख्या कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: वर्तमान में नारियां प्रत्येक क्षेत्र में अपना वर्चस्व स्थापित कर रही हैं। शिक्षा एवं आर्थिक स्वतंत्रता ने महिलाओं में नवीन चेतना भर दी है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका में वृद्धि हो रही है। आज महिलाएं राजनीति, व्यापार, कला तथा खेल सहित रक्षा क्षेत्र में भी नए आयाम गढ रही हैं।

- यह उनकी कार्यक्षमता का द्योतक है, क्योंकि प्राय: कमजोर समझी जाने वाली महिलाएं आज कठिन माने जाने वाले क्षेत्रों में भी अपनी क्षमता का प्रदर्शन कर रही हैं।
- गांधी जी ने कहा था कि ''महिलाएं पुरुषों से बेहतर सैनिक साबित हो सकती हैं। बस उनको मौका देने की जरूरत है।''
- कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स, टेंसी थॉमस, अवनी चतुर्वेदी जैसी अनेक नारियां आज समाज में महिलाओं की मजबूत छवि प्रस्तुत कर रही हैं। अग्नि-V मिसाइल के विकास में प्रमुख भूमिका निभाने वाली टेंसी थॉमस को 'मिसाइल वुमेन' के नाम से जाना जाता है।
- भारत के संबंध में कई बार वर्ल्ड बैंक ग्रुप आदि ने कहा है कि अगर यहां पर महिलाओं की आर्थिक भागीदारी में वृद्धि की जाए तो भारत की विकास दर में तीव्र वृद्धि हो सकती है।
- कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी के मामले में भारत की रैंकिंग विभिन्न देशों के मध्य निम्न है परंतु लिंग आधारित हिंसा की दर के मामले में यह काफी उच्च है।
- देश के कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी 2016 के 37 प्रतिशत से नीचे गिरकर 2019 में 18 प्रतिशत रह गई है एवं जेंडर गैप के मामले में 23 प्रतिशत पर आ गई है।
- यह माना जाता है कि कार्यबल में महिलाओं के प्रवेश को सुनिश्चित करने और उनकी भागीदारी बढ़ाने में जेंडर सेंसेटिव इंफ्रास्ट्रक्चर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- जेंडर सेंसेटिव इंफ्रास्ट्रक्चर के तहत बच्चों हेतु पूर्वकालिक शिशुगृह, कार्यशील महिलाओं हेतु वहनीय एवं सुरक्षित हॉस्टल एवं आधारभूत सार्वजनिक सुविधाएं शामिल हैं।

निष्कर्ष

वैश्वीकरण के इस अर्थप्रधान युग में एक ओर जहां स्त्रियां वर्जनाओं को तोड़ते हुए नित सफलता के नए सोपान पर चढ़ती जा रही हैं, वहीं दूसरी ओर उन्हें भोग की वस्तु के रूप में प्रचारित और प्रसारित भी किया जा रहा है।

- वर्तमान में स्त्रियों की स्थिति में काफी बदलाव आया है। सामरिक क्षेत्र तक पहुंच उनकी क्षमता का द्योतक है, फिर भी स्त्रियां अनेक स्थानों पर पुरुष प्रधान मानसिकता से पीड़ित रहती है।

प्र. विकास के परिप्रेक्ष्यों में सामाजिक परिवर्तन का मार्ग निर्धारण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: सामाजिक परिवर्तन मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तनों से जुड़े हैं। कई दें परिवर्तन, मीडिया प्रौद्योगिकी के प्रसार और शैक्षिक प्रणालियों या जनसंख्या संरचना में परिवर्तन सहित निहितार्थों के साथ अधिक परिवर्तन हुए हैं।

मकीवर एवं पेज (R.M. MacIver and C.H. Page) ने अपनी पुस्तक 'Society' में सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट करते हुए बताया है कि समाजशास्त्री होने के नाते हमारा प्रत्यक्ष संबंध सामाजिक संबंधों से है और उसमें आए हुए परिवर्तन को हम सामाजिक परिवर्तन कहेंगे।

- के. डेविस (K. Davis) के अनुसार सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य सामाजिक संगठन अर्थात् समाज की संरचना एवं प्रकार्यों में परिवर्तन है।
- ऊपर की परिभाषाओं के संबंध में यह कहा जा सकता है कि परिवर्तन एक व्यापक प्रक्रिया है। समाज के किसी भी क्षेत्र में विचलन को सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, भौतिक आदि सभी क्षेत्रें में होने वाले किसी भी प्रकार के परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है।

समाजिक परिवर्तन की विशेषता

- सामुदायिक परिवर्तन ही वस्तुत: सामाजिक परिवर्तन है। इस कथन का मतलब यह है कि सामाजिक परिवर्तन का नाता किसी विशेष व्यक्ति या समूह के विशेष भाग तक नहीं होता है। वे ही परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन कहे जाते हैं, जिनका प्रभाव समस्त समाज में अनुभव किया जाता है।

1

द्वितीय प्रश्न-पत्र

भारतीय समाज के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य

प्र. भारतीय समाज के अध्ययन के लिए एम-एन-श्रीनिवास के संरचनात्मक-प्रकार्यवादी उपागम की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: श्रीनिवास की समाजशास्त्रीय कल्पना चालीस और पचास के दशक में तैयार की गई थी जब भारत औपनिवेशिक से स्वतंत्रता के बाद की अवधि में स्थानांतरित हो रहा था और जब राष्ट्रवादी विचारों ने समकालीन यूटोपिया की संरचना की थी।

- एम.एन.श्रीनिवास ने भारत में समाजशास्त्र को एक 'संरचनात्मक प्रकार्यवादी' विषय के रूप में स्थापित किया।
- उन्होंने विश्लेषण किया कि कैसे विभिन्न सांस्कृतिक तत्व कुर्ग समाज की एकजुटता में योगदान करते हैं। उनका प्रमुख योगदान तत्कालीन प्रचलित प्रमुख प्रतिमान को चुनौती देना था, जो भारतीय समाज को विशुद्ध रूप से शाब्दिक दृष्टिकोण से समझने पर केंद्रित था और इस प्रक्रिया में, उन्होंने विशेष रूप से हिंदू समाज और सामान्य रूप से भारतीय समाज को समझने के लिए नए ढांचे की शुरुआत की।

श्रीनिवास के संरचनात्मक प्रकार्यवाद

जाति का अध्ययन करने के लिए एम. एन. श्रीनिवास 'संरचनात्मक प्रकार्यवाद'

श्रीनिवास ने जाति का अध्ययन संरचनात्मक प्रकार्यात्मक तरीके से किया। उन्होंने जाति के निम्नलिखित कार्यात्मक गुणों पर प्रकाश डाला।

जैविक प्रगति

श्रीनिवास गांव की आबादी को जाति और व्यवसाय के आधार पर बांटते हैं और फिर इन जातियों के कृषि से उनके संबंध की जांच करते हैं और इन्हें अपने व्यवसाय से जोड़ते हैं।

- यहां विचार एक दूसरे के साथ जातियों के जैविक एकीकरण को दिखाने के लिए हैं और जिस तरह से ये एक दूसरे के साथ संबंध रखते हैं।

अनुकूल प्रगति

इसके तहत श्रीनिवास ने एक अनुकूली जाति संरचना स्थापित करने का प्रयास किया, जो सदियों से खुद को बार-बार पुन: उत्पन्न कर रही है - वृद्धिशील सामाजिक परिवर्तन का एक सिद्धांत।

- उन्होंने जाति व्यवस्था के निरंतर अनुकूली चरित्र और परिवर्तन की आधुनिक प्रक्रियाओं में समायोजित करने की क्षमता पर प्रकाश डाला और गतिशीलता के लिए दो रास्ते प्रस्तुत किए, जो कि संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण है।
- ये परिवर्तन जाति को नए प्रभावों के अनुकूल बनाते हैं, इसकी विशेषताओं को संशोधित और नियंत्रित करते हैं, लेकिन इसे बदलने या पूरी तरह से गायब होने के लिए प्रेरित नहीं करते हैं।

भारत में नृवंशविज्ञान अध्ययन में संरचनात्मक कार्यात्मकता का अनुप्रयोग

- नृवंशविज्ञान कार्यात्मक प्रतिमान से संबंधित था और उन्नीसवीं शताब्दी की ब्रिटिश उदार विचारधारा के सिद्धांतों के संदर्भ में तैयार किया गया था।
- इसने विषय और वस्तु के बीच अंतर किया और सुझाव दिया कि विषय, सामाजिक वैज्ञानिक, को अपने द्वारा देखी गई वस्तु से अलग होना चाहिए।
- श्रीनिवास इस स्थिति से सहमत नहीं थे कि गांव एक आत्मनिर्भर और अलग-थलग इकाई है, नृवंशविज्ञान अध्ययन की एक इकाई के रूप में गांव पर जोर देने से उनके प्रतिमान सिद्धांतों ने उनके स्वीकृत इरादों का खंडन किया।

निष्कर्ष

सामाजिक नृविज्ञान और समाजशास्त्र में, श्रीनिवास का प्रयास सामाजिक मानवशास्त्रीय सिद्धांत और पद्धति का उपयोग करने की आवश्यकता को न्यायसंगत और वैध बनाना है।

- वह भारत में समाजशास्त्र की प्रचलित प्रथाओं का एक तरफ सामाजिक दर्शन और दूसरी तरफ सामाजिक कार्य, और संरचनात्मक कार्यात्मकता में इसके समकालीन क्रियाकलापों आलोचना करते हैं।
- श्रीनिवास ने भारत में नृविज्ञान को एक संरचनात्मक प्रकार्यवादी अनुशासन के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

प्र. लीला दुबे की ''बीज तथा भूमि'' की अवधारणा को समझाइए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: लीला दुबे ने अपने एक महत्वपूर्ण लेख ऑन द कंस्ट्रक्शन ऑफ जेंडर : हिन्दू गर्ल्स इन पैट्रिलिनियल इंडिया में लीला दुबे ने उन क्रियातंत्रों का पता लगाया है, जिनके माध्यम से बालिकाएं परिवारों

2

भारतीय समाज पर औपनिवेशिक शासन का प्रभाव

प्र. 'जाति-निर्मूलन' की अवधारणा से डॉ. भीमराव अंबेडकर का क्या तात्पर्य है? (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: डॉ. बी.आर. अम्बेडकर 20वीं सदी के सबसे महत्वपूर्ण नेताओं में से एक थे। उन्होंने जाति व्यवस्था को सामान्य रूप से भारतीय समाज और विशेष रूप से दलितों की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा के रूप में देखा। इसे समाप्त करने के लिए उन्होंने जाति व्यवस्था के उन्मूलन (Annihilation of the Caste System) का आह्वान किया।

अम्बेडकर के अनुसार, जाति व्यवस्था उन शास्त्रों और पुराणों से उत्पन्न हुई है, जो शोषण व्यवस्था को एक धार्मिक औचित्य प्रदान करती हैं। उनका मानना था कि जाति व्यवस्था शास्त्रों एवं पुराणों से जुड़ी दैवीय मान्यताओं के कारण बनी हुई है। जैसे- कर्म की अवधारणा, पुरुष सूक्त में जाति की उत्पत्ति का सिद्धांत आदि। इसलिए, जाति व्यवस्था के उन्मूलन के लिए सबसे पहले शास्त्रों की पवित्रता में विश्वास को नष्ट करना होगा।

जाति उन्मूलन के लिए डॉ. बी.आर. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित विभिन्न उपाय इस प्रकार हैं:

- हिंदुओं के पास सभी जातियों के लिए एक मानक पुस्तक होनी चाहिए जो सभी हिंदुओं को स्वीकार्य हो।
- पुरोहित व्यवस्था (Priesthood should) को समाप्त किया जाना चाहिए, यदि ऐसा संभव न हो सके तो कम से कम इसकी वंशानुगत व्यवस्था को समाप्त किया जाना चाहिए।
- पुरोहित व्यवस्था सभी हिंदुओं के लिए खुली होनी चाहिए और राज्य द्वारा विनियमित होनी चाहिए। उन्होंने पुरोहित के लिए राज्य द्वारा आयोजित एक परीक्षा का प्रस्ताव रखा।
- पुजारियों की संख्या राज्य द्वारा सीमित होनी चाहिए।
- उन्होंने जातिगत सीमाओं के उन्मूलन के एक तरीके के रूप में अंतर्जातीय विवाह का भी प्रस्ताव रखा।

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार उपर्युक्त प्रस्ताव स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित एक नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए आधार प्रदान करेंगे।

संक्षेप में कहें तो, ये प्रस्ताव लोकतंत्र स्थापित करने के साथ जाति-व्यवस्था के उन्मूलन में सहायक सिद्ध होंगे।

प्र. भारत में 'नव मध्यम वर्ग' के विशिष्ट लक्षणों की चर्चा करें। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: समाजशास्त्री एंथोनी गिडेंस (Anthony Giddens) के अनुसार 'मध्य वर्ग' उन लोगों के समूह को संदर्भित करता है, जो अपनी साख और कौशल के आधार पर अपने लिए एक स्तरीकृत सामाजिक संरचना का निर्माण कर लेते हैं।

भारत में 'पुराने मध्यवर्ग' (Old Middle Class) का विकास ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप हुआ है। बी.बी. मिश्रा के अनुसार पुराने मध्यवर्ग ब्रिटिश हितों को पूरा करने के लिए बिचौलियों के एक वर्ग के रूप में उभरे। इस समूह में मुख्य रूप से उच्च जाति के व्यक्ति शामिल थे और उन्हें आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा और आधुनिक उदारवादी दृष्टिकोण की समझ थी। स्वतंत्रता के बाद धीरे-धीरे विशिष्ट विशेषताओं के साथ एक नया मध्यम वर्ग (New Middle Class) का उभार हुआ।

भारत में नए मध्यम वर्ग की विशेषताएं

- 'नए मध्यम वर्ग' में पुराने मध्यम वर्ग के विपरीत कुशल और सफेदपोश श्रमिक (White Collar Workers) शामिल हैं, इसके अंतर्गत मुख्य रूप से निम्न पूंजीपति वर्ग को प्राथमिकता दी गई है।
- नए मध्यम वर्ग में आरक्षण और आधुनिक शिक्षा जैसे कारकों के कारण कुछ एससी और एसटी समुदायों को भी शामिल किया गया है।
- नया मध्यम वर्ग नौकरी की सुरक्षा के बजाय नौकरी से संतुष्टि चाहता है।
- वे अपने जन्म स्थान से भावनात्मक रूप से जुड़े नहीं हैं। इसलिए वे उच्च भौगोलिक गतिशीलता प्रदर्शित करते हैं।
- उनका धार्मिक दृष्टिकोण आमतौर पर धर्मनिरपेक्ष होता हैं।
- वे उद्यमों में अपने कौशल का बेहतर प्रदर्शन करने की कोशिश करते हैं, जिसे इस तथ्य में देखा जा सकता है कि कई सफल स्टार्टअप नए मध्यम वर्ग के सदस्यों द्वारा शुरू किए गए हैं।
- वे सामाजिक अंत:क्रियाओं में फेसलेस रिश्तों (Faceless Relationships) और अवैयक्तिकता (Impersonality) की विशेषता भी रखते हैं।

3

ग्रामीण एवं कृषक सामाजिक संरचना

प्र. क्या आप सहमत हैं कि भारत में कृषि वर्ग संरचना परिवर्तित हो रही है? दृष्टांतों के साथ अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: भारतीय समाज प्राथमिक रूप से ग्रामीण समाज ही है हालांकि यहां नगरीकरण बढ रहा है। भारत के बहुसंख्यक लोग गांव में ही रहते हैं (69 प्रतिशत, 2011 की जनगणना के अनुसार) उनका जीवन कृषि अथवा उससे संबंधित व्यवसायों से चलता है।

- कृषि एवं संस्कृति के बीच एक घनिष्ठ संबंध है। हमारे देश में कृषि की प्रकृति और अभ्यास प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न-भिन्न तरह का मिलेगा। ये भिन्नताएं विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियों में बिंबित होती हैं।
- ग्रामीण भारत की सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना दोनों कृषि और कृषिक (एगरेरियन) जीवन पद्धति से बहुत निकटता से जुड़ी हुई है।
- अधिकतम ग्रामीण जनसंख्या के लिए कृषि जीविका का एकमात्र महत्वपूर्ण स्रोत या साधन है। लेकिन ग्रामीण सिर्फ कृषि ही नहीं करते थे, बहुत से ऐसे क्रियाकलाप हैं जो कृषि और ग्राम्य जीवन की मदद के लिए हैं और वे ग्रामीण भारत में लोहों के जीविका के स्रोत हैं।

भारत में कृषक वर्ग संरचना में परिवर्तन

- भारत में ऐतिहासिक कारणों से कुछ क्षेत्र मात्र एक या दो मुख्य समूहों के प्रभुत्व में रहे। लेकिन यह जानना महत्वपूर्ण है कि कृषक संरचना पूर्व-औपनिवेशिक से औपनिवेशिक और स्वतंत्रता के पश्चात बृहद रूप में परिवर्तित होती रही। जबकि वही प्रबल जाति पूर्व-औपनिवेशिक काल में भी कृषिक जाति थी, वे प्रत्यक्ष रूप में जमीन के मालिक नहीं थे। इनके स्थान पर, शासन करने वाले समूह जैसे कि स्थानीय राजा या जमींदार भूमि पर नियंत्रण रखते थे।
- किसान अथवा कृषक जो कि उस भूमि पर कार्य करता था वह फसल का एक पर्याप्त भाग उन्हें देता था। जब ब्रिटिश औपनिवेशिक भारत में आए, तो उन्होंने कई क्षेत्रों में इन स्थानीय जमींदारों द्वारा ही काम चलवाया। उन्होंने जमींदारों को संपति के अधिकार भी दे दिए। ब्रिटिश लोगों के लिए काम करते हुए उन्हें जमीन पर पहले से ज़्यादा नियंत्रण मिला।
- भारत के स्वतंत्र होने के बाद नेहरू और उनके नीति सलाहकारों ने नियोजित विकास के कार्यक्रमों की तरफ़ अपना ध्यान केंद्रित किया कृषिकीय सुधारों के साथ ही साथ औद्योगीकरण भी इसमें शामिल था।
- भू-सुधार के कानूनों के अंतर्गत अन्य मुख्य कानून था पट्टेदारी का उन्मूलन और नियंत्रण या नियमन अधिनियम। उन्होंने या तो पट्टेदारी को पूरी तरह से हटाने का प्रयत्न किया या किरा, के नियम बना, ताकि पट्टेदार को कुछ सुरक्षा मिल सके।
- भूस्वामियों (जो अधिकतर प्रबल जाति के होते थे) तथा कृषि मजदूरों के (अधिकतर निम्न जातियों के) मध्य संबंधों की प्रगति में परिवर्तन का वर्णन समाजशास्त्री जान ब्रेमन ने 'संरक्षण से शोषण' की ओर बदलाव में किया था।
- ऐसे परिवर्तन उन तमाम क्षेत्रों में हुए जहां कृषि का व्यापारीकरण अधिक हुआ, अर्थात् जहां फसलों का उत्पादन मूल रूप से बाजार में बिक्री के लिए किया।
- मजदूर संबंधों का यह बदलाव कुछ विद्वानों द्वारा पूंजीवादी कृषि की ओर एक बदलाव के रूप में देखा जाता है। क्योंकि पूंजीवादी उत्पादन व्यवस्था, उत्पादन के साधन (इस मामले में भूमि) तथा मजदूरों के पृथक्कीकरण तथा 'मुक्त' दिहाड़ी मजदूरों के प्रयोग पर आधारित होता है।
- सामान्यत:, यह सच है कि अधिक विकसित क्षेत्रों के किसान अधिक बाजारोन्मुखी हो रहे थे। गषि के अधिक व्यापारीकरण के कारण ये ग्रामीण क्षेत्र भी विस्तृत अर्थ व्यवस्था से जुड़ते जा रहे थे। इस प्रक्रिया से मुद्रा का गांवों की तरफ बहाव बढा तथा व्यापार के अवसरों व रोज़गार में विस्तार हुआ।
- भारत सरकार की हाल ही में प्रारम्भ की गई दीनदयाल उपाध्याय ज्योति योजना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है। ग्रामीण विकास के इन प्रयासों का समग्र परिणाम न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा कृषि में रूपांतरण था बल्कि कृषिक संरचना तथा ग्रामीण समाज में भी रूपांतरण था।

निष्कर्ष

उपरोक्त तथ्यों से विदित होता है कि भारत में कृषि वर्ग संरचना में परिवर्तन हो रहा है। हाल के वर्षों में कृषि क्षेत्र में में महिलाओं की भागीदारी बढी है।

4

जाति व्यवस्था

प्र. **जाति व्यवस्था की बदलती प्रगति को उपयुक्त दृष्टांतों सहित विस्तार से बताइए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)**

उत्तर: जाति भारतीय उपमहाद्वीप से जुड़ी अनूठी संस्था है। हालांकि विश्व के अन्य भागों में भी समान प्रभाव उत्पन्न करने वाली सामाजिक व्यवस्थाएं पाई जाती हैं, परंतु जाति व्यवस्था अपने आप में अपवाद ही है।

- हालांकि, यह हिंदू समाज की संस्थात्मक विशेषता है पर इसका प्रचलन भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य धार्मिक समुदायों में भी फैला हुआ है खासकर मुसलमानों, ईसाइयों और सिखों में।
- जाति को क्षेत्रीय या स्थानीय उप-वर्गीकरण के रूप में समझा जा सकता है जिसमें सैकड़ों या यहां तक की हज़ारों जातियों एवं उप-जातियों से बनी अत्यधिक जटिल व्यवस्था शामिल होती है।
- सैद्धांतिक तौर पर, जाति व्यवस्था को सिद्धांतों के दो समुच्चयों के मिश्रण के रूप में समझा जा सकता है, एक भिन्नता और अलगाव पर आधारित है और दूसरा संपूर्णता और अधिक्रम पर।
- हर जाति से यह अपेक्षित है कि वह दूसरी जाति से भिन्न हों और इसलि, वह प्रत्येक अन्य जाति से कठोरता से पृथक होती है। अत: जाति के अधिकांश धर्मग्रंथसम्मत नियमों की रूपरेखा जातियों को मिश्रित होने से बचाने के अनुसार बनाई गई है।

जाति व्यवस्था की बदलती प्रकृति:

धार्मिक या कर्मकांडीय : धार्मिक या कर्मकांडीय दृष्टि से जाति की अधिक्रमित व्यवस्था 'शुद्धता' (शुचिता) और 'अशुद्धता' (अशुचिता) के बीच के अंतर पर आधारित होती है।

- यह विभाजन जिसे हम पवित्र के करीब मानने में विश्वास रखते हैं (अत: कर्मकांड की शुद्धता के लक्ष्यार्थ), उसके और जिसे हम पवित्र से परे मानते हैं या उसके विपरीत मानते हैं अत: वह कर्मकांड के लिए प्रदूषित होता है, के बीच हैं।
- वह जातियां जिन्हें कर्मकांड की दृष्टि से शुद्ध माना जाता है उनका स्थान उच्च होता है और जिनको कम शुद्ध या अशुद्ध माना जाता है उन्हें निम्न स्थान दिया जाता है।

औपनिवेशिक काल : औपनिवेशिक काल के दौर में सभी प्रमुख सामाजिक संस्थाओं में और विशेष रूप से जाति व्यवस्था में प्रमुख परिवर्तन आए। वस्तुत: कुछ विद्वान तो कहते हैं कि आज जिसे हम जाति के रूप में जानते हैं वह प्राचीन भारतीय परंपरा की अपेक्षा उपनिवेशवाद की ही अधिक देन है।

- यह सभी परिवर्तन जान-बूझकर या सोच-समझकर नहीं लाए गए। प्रारंभ में, ब्रिटिश प्रशासकों ने देश पर कुशलतापूर्वक शासन करना सीखने के उद्देश्य से जाति व्यवस्थाओं की जटिलताओं को समझने के प्रयत्न शुरू किए।
- इन प्रयत्नों के अंतर्गत देश भर में विभिन्न जनजातियों तथा जातियों की 'प्रथाओं और तौर-तरीकों' के बारे में अत्यंत सुव्यवस्थित रीति से गहन सर्वेक्षण किए गए और उनके विषय में रिपोर्टें तैयार की गईं।
- 1901 में हरबर्ट रिजले के निर्देशन में कराई गई जनगणना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि इस जनगणना के अंतर्गत जाति के सामाजिक अधिक्रम के बारे में जानकारी इकट्ठी करने का प्रयत्न किया गया अर्थात् किस क्षेत्र में किस जाति को अन्य जातियों की तुलना में सामाजिक दृष्टि से कितना ऊंचा या नीचा स्थान प्राप्त है और तदनुसार श्रेणी क्रम में प्रत्येक जाति की स्थिति निर्धारित कर दी गई।

औपनिवेशिक शासन : औपनिवेशिक शासन द्वारा किए गए अन्य हस्तक्षेपों ने भी जाति संस्था पर अपना प्रभाव डाला। भूराजस्व व्यवस्थाओं और तत्संबंधी प्रबंधों तथा कानूनों ने उच्च जातियों के रूढिगत (जाति आधारित) अधिकारों को वैध मान्यता देने का कार्य किया। अब ये जातियां, सामंती वर्गों की बजाय, आधुनिक अर्थों में भू-स्वामी यानी ज़मीन की मालिक बन गईं और ज़मीन की उपज पर अथवा राजस्व या अन्य कई प्रकार के नज़ारानों पर उनका दावा स्थापित हो गया।

औद्योगिक विकास : राज्य के विकास संबंधी कार्यकलाप और निजी उद्योग की संवृद्धि ने भी आर्थिक परिवर्तन में तीव्रता और गहनता लाकर अप्रत्यक्ष रूप से जाति संस्था को प्रभावित किया।

- आधुनिक उद्योग ने सभी प्रकार के नए-नए रोज़गार के अवसर तैयार कि, जिनके लिए, कोई जातीय नियम नहीं थे। नगरीकरण और शहरों में सामूहिक रहन-सहन की परिस्थितियों ने सामाजिक अंत:क्रिया के जाति-पृथक्कृत स्वरूपों का अधिक समय तक चलना मुश्किल कर दिया।
- एक अन्य स्तर पर, आधुनिक शिक्षा प्राप्त भारतीय व्यक्तिवाद और योग्यतातंत्र अर्थात् योग्यता को महत्व देने के उदार विचारों से आकर्षित हुए और उन्होंने अधिक अतिवादी जातीय व्यवहारों को छोड़ना प्रारंभ कर दिया।

5

भारत में जनजातीय समुदाय

प्र. भारत में आदिवासी समुदायों के एकीकरण की चुनौतियों को स्पष्ट कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: जनजातियां वह मानव समुदाय हैं जो एक अलग निश्चित भू-भाग में निवास करती हैं और जिनकी एक अलग संस्कृति, अलग रीति-रिवाज, अलग भाषा होती है तथा ये केवल अपने ही समुदाय में विवाह करती हैं।

- भारतीय संविधान में जहां इन्हें 'अनुसूचित जनजाति' कहा गया है तो दूसरी ओर, इन्हें अन्य कई नामों से भी जाना जाता है मसलन- आदिवासी, आदिम-जाति, वनवासी, प्रागैतिहासिक, असभ्य जाति, असाक्षर, निरक्षर तथा कबीलाई समूह इत्यादि।
- भारतीय जनजातियों का मूल स्रोत कभी देश के संपूर्ण भू-भाग पर फैली प्रोटो ऑस्ट्रेलॉयड तथा मंगोल जैसी प्रजातियों को माना जाता है। इनका एक अन्य स्रोत नेग्रिटो प्रजाति भी है जिसके वंशज अण्डमान- निकोबार द्वीपसमूह में अभी भी मौजूद हैं।
- अनेकता में एकता ही भारतीय संस्कृति की पहचान है और इसी के मूल में निश्चित रूप से भारत के विभिन्न प्रदेशों में स्थित जनजातियां हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में रहते हुए अपनी संस्कृति के जरिये भारतीय संस्कृति को एक अनोखी पहचान देती हैं। वर्तमान में भी भारत में उत्तर से लेकर दक्षिण तथा पूर्व से लेकर पश्चिम तक जनजातियों के साथ-साथ संस्कृति का विविधीकरण देखने को मिलता है। भारत भर में जनजातियों की स्थिति का जायजा उनके भौगोलिक वितरण को समझकर आसानी से लिया जा सकता है।

भारत में जनजातियों के एकीकरण में आने वाली चुनौतियां:

भौगोलिक वितरण : भारतीय जनजातियों का वितरण असमान है। वे भौगोलिक रूप से **उत्तर तथा पूर्वोत्तर क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, दक्षिण क्षेत्र और द्वीपीय क्षेत्र** में निवास करते हैं। उत्तर तथा पूर्वोत्तर क्षेत्र के अंतर्गत हिमालय के तराई क्षेत्र, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र सम्मिलित किये जाते हैं, जबकि मध्य क्षेत्र की तो इसमें प्रायद्वीपीय भारत के पठारी तथा पहाड़ी क्षेत्र शामिल हैं। भौगोलिक विविधता के कारण उनका रहन-सहन में विविधता पाई जाती है, जो एकीकरण में प्रमुख बाधक है।

सांस्कृतिक विविधता : भौगोलिक रूप से देश के कई क्षेत्रों में निवास करने वाले जनजातीय समूहों की संस्मति अगल-अलग होता है तथा ये केवल अपने ही समुदाय में विवाह करती हैं। जो जनजातियों को एकीकरण में बाधक बन सकता है।

धार्मिक विविधता : धार्मिक अलगाव भी जनजातियों की समस्याओं का एक बहुत बड़ा पहलू है। इन जनजातियों के अपने अलग देवी-देवता होते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है समाज में अन्य वर्गों द्वारा इनके प्रति छुआछूत का व्यवहार। अगर हम थोड़ा पीछे जायें तो पाते हैं कि इन जनजातियों को अछूत तथा अनार्य मानकर समाज से बेदखल कर दिया जाता थाय सार्वजनिक मंदिरों में प्रवेश तथा पवित्र स्थानों के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया जाता था। आज भी इनकी स्थिति ले-देकर यही है।

सामाजिक अलगाव : आज भी सामाजिक संपर्क स्थापित करने में अपने-आप को सहज नहीं पाती हैं। इस कारण ये सामाजिक-सांस्कृतिक अलगाव, भूमि अलगाव, अस्पृश्यता की भावना महसूस करती हैं। इसी के साथ इनमें शिक्षा, मनोरंजन, स्वास्थ्य तथा पोषण संबंधी सुविधाओं से वंचन की स्थिति भी मिलती है।

शैक्षिक असमानता : भौगोलिक स्थिति, विरल आबादी और आदिवासी गांवों की दुर्गमता जैसे कई कारक हैं जो जनजातीय क्षेत्रों में विद्यालय तक पहुंच को कठिन बनाते हैं। विद्यालय की सुविधा उपलब्ध होने के बाद भी कार्यबल में बच्चों की समयपूर्व भागीदारी, घोर गरीबी, घरों में शिक्षा समर्थक संस्कृति का अभाव आदि के परिणामस्वरूप जल्द ही विद्यालय छोड़ देने (early dropout) की उच्च दर बनी हुई है।

मूल निवासी पहचान का क्षरण : पारंपरिक जनजातीय संस्थाओं और कानूनों का आधुनिक संस्थानों से टकराव बढ़ रहा है, जिससे समुदाय के लोग अपनी मूल पहचान बनाए रखने के बारे में चिंतित हुए हैं। चिंता का एक अन्य कारण जनजातीय बोलियों और भाषाओं का लुप्त होना है।

निष्कर्ष :

जनजातियां (Tribes) भारतीय समाज में एक महत्त्वपूर्ण तत्व का प्रतिनिधित्व करती हैं जो हमारी सभ्यता की सांस्कृतिक पच्चीकारी (Cultural Mosaic) के साथ एकीकृत है। जनजातियां भारतीय आबादी में 8.6% की हिस्सेदारी रखती हैं।

- अनुसूचित जनजातियों के हितों की अधिक प्रभावी तरीके से रक्षा हो, इसके लिये 2003 में 89वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के द्वारा पृथक राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना भी की गई। संविधान में जनजातियों के राजनीतिक हितों की भी रक्षा की गई है। उनकी संख्या के अनुपात में राज्यों की विधानसभाओं तथा पंचायतों में स्थान सुरक्षित रखे गए हैं।

6

भारत में सामाजिक वर्ग

प्र. परिवर्तनशील भारतीय समाज के संदर्भ में आंद्रे बेतै की सुसंगत (हार्मोनिक) तथा विसंगत (डिसहार्मोनिक) सामाजिक संरचनाओं की अवधारणाओं को आप किस प्रकार देखते हैं? (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: आंद्रे बेते ने स्तरीकरण को या तो सुसंगत (हार्मोनिक : जहां मानदंड असमानता को वैध बनाते हैंय जाति व्यवस्था) या विसंगत (डिस-हार्मोनिक : जहां मानदंड समानता को वैध करते हैं लेकिन असमानता वास्तविकता है) के रूप में परिभाषित किया है।

विश्लेषण की एक योजना के रूप में इसकी उपयोगिता की जांच करते हुए आंद्रे बेते ने भारतीय समाज के जाति मॉडल के इस परिप्रेक्ष्य की बुनियादी विशेषताओं को रेखांकित किया है।

जाति मॉडल की विशेषताएं

(I) यह मॉडल लोगों के कुछ विशेष वर्गों द्वारा माने और व्यक्त किए जाने वाले विचारों पर आधारित है। यह उनके आचरण पर आधारित नहीं है, हालांकि इसके अध्ययन के लिए द्वितीयक अनुभवजन्य सामग्री भी प्रयोग की गई है।

(II) यह भारत में जाति को एक तरह से पहला और सार्वभौमिक महत्व देता है जैसे कि शास्त्रों में इसकी धारणा दी गई है।

(III) इस पूरी व्यवस्था को इस रूप में देखा जाता है कि यह कमोबेश स्पष्टत: रचित निश्चित सिद्धांत या खेल के नियमों से संचालित है।

(IV) आंद्रे बेते इस मॉडल से उत्पन्न होने वाले दो जोखिमों की ओर भी इशारा करते हैं। इसमें सबसे पहला जोखिम यह है कि यह सिद्धांत इतना सामान्य है कि यह किसी भी समाज के लिए प्रयुक्त हो सकता है। दूसरा जोखिम यह है कि यह आर्थिक और राजनीतिक जीवन की बारीकियों को लेकर नहीं चलता है।

ढांचागत परिवर्तन

भूमि सुधारों, शिक्षा के प्रसार, सामाजिक विधान, लोकतंत्रीकरण और नगरीकरण के रूप में ढांचागत परिवर्तन नजर आते हैं। इन परिवर्तनों का वर्ण व्यवस्था पर यह असर पड़ता है कि जातिगत संगठन जैसे अनुकूलन युक्तियां अक्सर सामाजिक लामबंदी की युक्त बन जाती है।

- भारतीय समाज में स्तरीकरण की एक व्यवस्था के रूप में 'वर्ग' उस तरह से घिरे हुए, नहीं मिलते जिस तरह से जातियां घिरी हैं। जिस पर वर्ण व्यवस्था ने जो भी ''समस्याएं'' खड़ी की है उनमें से अधिकांश की प्रकृति वर्गीय है, जिनका संबंध आर्थिक वर्चस्व और पराधीनता, विशेषाधिकारों और वंचनाओं, स्पष्ट क्षति और महज जीवित बने रहने से है। ये समस्याएं अनिवार्यत: संपन्न और वंचितों की है।
- इसलिए भारत की स्थिति अन्य समाजों से इस मामले में भिन्न है कि इसकी समस्याएं 'वर्गीय' चरित्र की तो है मगर समाज के टुकड़ों के रूप में वर्ग' ठोस-सामाजिक-आर्थिक इकाइयों के रूप में मौजूद नहीं हैं।
- आंद्रे बेते के अनुसार सत्ताधिकार एक प्रभावी जाति से दूसरी प्रभावी जाति के पास चला गया है। यही नहीं यह जाति के ढांचे से निकल कर अपेक्षाकृत अधिक विभेदित ढांचों जैसे पंचायतों और राजनीतिक दलों के पास चला गया है।

निष्कर्ष

बेते के अनुसार यह मॉडल जो कि मुख्यत: लुई डड्मों के अध्ययन से जुड़ा है, हिंदुत्व से। संबंधित विश्वासों की व्याख्या में बड़ा उपयोगी रहा है।

- वह राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं को समझने के लिए हितों के अध्ययन को महत्वपूर्ण मानते हैं। उन्होंने तंजोर गांव में जाति का जो विश्लेषण किया है वह इस तरह के सरोकार का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

प्र. भारत में अस्पृश्यता के विभन्न स्वरूपों को समझाइए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: अस्पृश्यता भारतीय समाज की विशिष्ट विशेषताओं में से एक है। यद्यपि भारत में ब्रिटिश शासन के आगमन के बाद और शिक्षा के प्रसार के बाद शिक्षाविदों का विशेष ध्यान अस्पृश्यता की ओर गया, जो हिन्दू समाज में व्याप्त है।

- जाति व्यवस्था की संस्था, जिसने अस्पृश्यता हेतु नींव और न्यायपूर्ण सिद्धांत का सृजन किया उसकी शुरुआत 5वीं से दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के दौरान बौद्ध धर्म और जैन धर्म द्वारा किया गया।
- गुप्त काल के दौरान ब्राह्मणवाद के पुनरुत्थान के बाद दूसरी शताब्दी ईसा शताब्दी के आसपास अस्पृश्यता विकसित हुई, जिसे वैष्णववाद और शैववाद ने कुछ हद तक प्रभावित किया और इसने जाति विशिष्टता को त्यागने हेतु प्रोत्साहित किया।

7

भारत में नातेदारी की व्यवस्थाएं

प्र. एक वैचारिक प्रणाली के रूप में पितृसत्ता के भौतिक आधार पर चर्चा कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: पितृसत्ता महिलाओं की उन्नति और विकास में प्रमुख बाधा है। वर्चस्व के स्तरों में अंतर के बावजूद व्यापक सिद्धांत समान हैं, अर्थात पुरुष नियंत्रण में हैं। इस नियंत्रण की प्रगति भिन्न हो सकती है। इसलिए महिलाओं के वर्चस्व और अधीनता को बनाए रखने वाली व्यवस्था को समझना और महिलाओं के विकास के लिए व्यवस्थित तरीके से काम करने के लिए इसकी कार्यप्रणाली को समझना आवश्यक है।

- आधुनिक दुनिया में जहां महिलाएं अपनी योग्यता से आगे बढ़ती हैं, वहां पितृसत्ता महिलाओं को समाज में आगे बढ़ने में बाधा उत्पन्न करती है। क्योंकि पितृसत्तात्मक संस्थाएं और सामाजिक संबंध महिलाओं की हीन या दोयम दर्जे की स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं।
- पितृसत्तात्मक समाज पुरुषों को पूर्ण प्राथमिकता देता है और कुछ हद तक महिलाओं के मानवाधिकारों को भी सीमित करता है।
- पितृसत्ता सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में पुरुष वर्चस्व को संदर्भित करती है। इस प्रकार नारीवादी 'पितृसत्ता' शब्द का प्रयोग पुरुषों और महिलाओं के बीच शक्ति संबंधों का वर्णन करने के साथ-साथ महिलाओं की अधीनता के मूल कारण का पता लगाने के लिए करते हैं।
- पितृसत्ता सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में पुरुष वर्चस्व को संदर्भित करती है। नारीवादी मुख्य रूप से पुरुषों और महिलाओं के बीच शक्ति संबंधों का वर्णन करने के लिए 'पितृसत्ता' शब्द का उपयोग करते हैं।
- इस प्रकार, पितृसत्ता केवल एक शब्द से अधिक है। नारीवादी इसे एक अवधारणा की तरह उपयोग करते हैं, और अन्य सभी अवधारणाओं की तरह यह महिलाओं की वास्तविकताओं को समझने में हमारी मदद करने का एक उपकरण है।
- पितृसत्ता की अवधारणा को अलग-अलग विचारकों ने अलग-अलग तरीकों से परिभाषित किया है। मिचेल, एक नारीवादी मनोवैज्ञानिक, पितृसत्ता शब्द का उपयोग ''रिश्तेदारी प्रणालियों को संदर्भित करने के लिए करती है जिसमें पुरुष महिलाओं का आदान-प्रदान करते हैं''।
- वाल्बी ने ''पितृसत्ता को सामाजिक संरचनाओं और प्रथाओं की एक प्रणाली के रूप में परिभाषित किया है जिसमें पुरुष महिलाओं पर हावी, दमन और शोषण करते हैं''।

पितृसत्ता की उत्पत्ति :

- पितृसत्ता के अस्तित्व और उत्पत्ति के संबंध में, परंपरावादियों का मानना है कि पुरुष हावी होने के लिए पैदा हुए हैं और महिलाएं अधीनस्थ होने के लिए।
- उनका मानना है कि यह पदानुक्रम हमेशा अस्तित्व में था और जारी रहेगा और प्रगति के अन्य नियमों की तरह इसे भी बदला नहीं जा सकता है। कुछ अन्य लोग भी हैं जो इन मान्यताओं को चुनौती देते हैं और कहते हैं कि पितृसत्ता प्रागतिक नहीं है, यह मानव निर्मित है और इसलिए इसे बदला जा सकता है।

महिलाओं की अधीनता

पितृसत्ता, जो स्त्री पर पुरुष की प्रागतिक श्रेष्ठता को पहले से ही मान लेती है, जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों पर महिलाओं की निर्भरता और अधीनता को बरकरार रखती है। नतीजतन, परिवार, समाज और राज्य के भीतर सभी शक्ति और अधिकार पूरी तरह से पुरुषों के हाथों में रहते हैं।

- इसलिए, पितृसत्ता के कारण, महिलाओं को उनके कानूनी अधिकारों और अवसरों से वंचित कर दिया गया, पितृसत्तात्मक मूल्य महिलाओं की गतिशीलता को प्रतिबंधित करते हैं, अपनी स्वतंत्रता के साथ-साथ उनकी संपत्ति को भी अस्वीकार करते हैं।
- पितृसत्ता एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें महिलाओं को कई तरह से अधीनस्थ रखा जाता है। जिस अधीनता का हम दैनिक स्तर पर अनुभव करते हैं, भले ही हम किसी भी वर्ग के क्यों न हों, परिवार के भीतर, कार्यस्थल पर, समाज में, भेदभाव, अवहेलना, अपमान, नियंत्रण, शोषण, उत्पीड़न, हिंसा के विभिन्न रूप ले लेते हैं।

निष्कर्ष

महिलाओं को दूर रखने के लिए पितृसत्तात्मक विचारधारा क्रमशः महिलाओं और पुरुषों के लिए निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माण के माध्यम से सत्ता प्रणालियों का प्रयास किया गया है।

- इस प्रणाली में, महिलाओं को नियंत्रित करने और अधीन करने के लिए विभिन्न प्रकार की हिंसा का प्रयोग किया जा सकता है, पुरुषों द्वारा ऐसी हिंसा को वैध भी माना जा सकता है और महिलाओं को हमेशा पुरुष हिंसा का सामना करना होता है।

8

धर्म एवं समाज

प्र. भारत में धार्मिक अल्पसंख्यकों की समस्याओं की चर्चा कीजिए तथा उन्हें हल करने के उपाय सुझाइए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: अल्पसंख्यक शब्द का तात्पर्य ऐसे समूह से है, जिसकी जनसंख्या सम्पूर्ण जनसंख्या के आधी से भी कम हो और जो अन्यों से भिन्न हो तथा जो विशेष रूप से जाति, धर्म, परम्पराओं तथा संस्कृति, भाषा आदि की दृष्टि से प्रधान वर्ग रहा हो।

- भारत में राष्ट्रीय स्तर पर धार्मिक अल्पसंख्यकों के संबंध में वे सभी समुदाय, जो हिन्दू धर्म के अलावा किसी अन्य धर्म को मानते हैं, उन्हें अल्पसंख्यक माना जाता है, क्योंकि देश की 80 प्रतिशत से ज्यादा आबादी हिन्दू धर्म को मानती है। राष्ट्रीय स्तर पर मुस्लिम समुदाय सबसे बड़ा अल्पसंख्यक समुदाय है।
- वर्तमान में केंद्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग (एनसीएम) अधिनियम, 1992 की धारा 2 (C) के तहत अधिसूचित समुदायों को ही अल्पसंख्यक माना जाता है।
- एनसीएम अधिनियम, 1992 के अधिनियमन के साथ ही वर्ष 1992 में MC वैधानिक निकाय बन गया, जिसका नाम बदलकर NCM कर दिया गया।
- वर्ष 1993 में पहला सांविधिक राष्ट्रीय आयोग स्थापित किया गया था और पांच धार्मिक समुदाय अर्थात् मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध तथा पारसी को अल्पसंख्यक समुदायों के रूप में अधिसूचित किया गया था। वर्ष 2014 में जैनियों को भी अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में अधिसूचित किया गया था।
- टीएमए पाई फाउंडेशन व अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और ओर्स डी (2002) मामले में उच्चतम न्यायलय ने यह निर्णय लिया कि अनुच्छेद 30 के प्रयोजनार्थ अल्पसंख्यक वर्ग चाहे वह भाषायी हो या धार्मिक का निर्धारण सम्पूर्ण देश की जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए नहीं बल्कि राज्य के संदर्भ में किया जाएगा।

धार्मिक अल्पसंख्यकों की समस्या

पहचान की समस्या: धार्मिक अल्पसंख्यकों में सर्वत्र पहचान की समस्या रहती है तथा उन्हें बहुसंख्यकों से सामन्जस्य स्थापित करने में समस्या उत्पन्न होती है। जैसे सिक्ख पंजाब में बहुसंख्यक है परन्तु देश में उन्हें अल्पसंख्यक के रूप में मान्यता प्राप्त है।

सुरक्षा की समस्या: देश के लोकतांत्रिक ढांचे में संख्या शक्ति का सबसे अधिक महत्व होता है लेकिन हिन्दुओं की तुलना में अन्य धार्मिक लोगों की कुल संख्या बहुत कम होने के कारण वे नागरिक और राजनीतिक अधिकारों से वंचित होते जाते हैं। भिन्न पहचान व समाज में अपेक्षाकृत कम संख्या में जीवन हानि व सम्पत्ति हानि का भय उत्पन्न करती है। अल्पसंख्यक व बहुसंख्यक में इस प्रकार की समस्या सामाजिक स्थिति को और जटिल बना देती है।

शैक्षणिक समस्या : अल्संख्यकों में एक सबसे बड़ी समस्या बहुसंख्यक समुदायों की तुलना में शिक्षा का पिछड़ापन है। शिक्षा की कमी के कारण राजकीय नौकरियों में जब उनका सहभाग कम रह जाता है तो उनमें असंतोष बढ़ने लगता है।

पिछड़ापन: अल्पसंख्यक समुदाय समाज के मुख्य धारा से जुड़ नहीं पाया। सच्चर समिति की रिपोर्ट को आधार माने तो मुस्लिम समुदाय की स्थिति अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति से भी बुरी है यह समस्या अल्पसंख्यकों को दिग्भ्रमित होने हेतु अधिक सुभेद्य बनाती है।

सांस्कृतिक पृथकता की समस्या : धार्मिक समुदाय की एक मुख्य समस्या उनका एक पृथक सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन है। देश के अन्य समुदायों के लिए जहां समान नागरिक संहिता लागू है, वहीं मुसलमानों को उन्हीं के धार्मिक प्रतिनिधियों द्वारा यह निर्देश दिया जाता है कि वे अपने सामाजिक नियमों तथा मुस्लिम पर्सनल लॉ के अनुसार व्यवहार करे।

धार्मिक अल्पसंख्यकों के समस्याओं के हल करने के उपाय:

संवैधानिक सुरक्षा

- अनुच्छेद 29 : यह प्रावधान करता है कि भारत के किसी भी हिस्से में रहने वाले नागरिकों के किसी भी वर्ग की अपनी एक अलग भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे संरक्षित करने का अधिकार होगा। यह धार्मिक अल्पसंख्यकों के साथ-साथ भाषायी अल्पसंख्यकों दोनों को सुरक्षा प्रदान करता है।
- हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि इस अनुच्छेद का दायरा केवल अल्पसंख्यकों तक ही सीमित नहीं है, क्योंकि अनुच्छेद में 'नागरिकों के वर्ग' शब्द के उपयोग में अल्पसंख्यकों के साथ-साथ बहुसंख्यक भी शामिल हैं।

9

भारत में सामाजिक परिवर्तन की दृष्टियां

प्र. योगेन्द्र सिंह की 'भारतीय परम्परा के आधुनिकीकरण' पर थीसिस का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर : स्वतंत्रता पश्चात, भारतीय समाज में तीव्र गति से परिवर्तन हुए। प्रोफेसर योगेंद्र सिह के अनुसार, यह परिवर्तन मुख्यता संस्कृति, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्रों में हुए हैं। जिसके फलस्वरुप भारतीय संविधान में समानता, बंधुत्व, धर्मनिरपेक्षता और सहअस्तित्व के सिद्धांत को अपनाकर प्रजातांत्रिक मूल्यों के आधार पर एक नए भारतीय समाज का उदय हुआ।

- इस समाज का उद्देश्य सामाजिक असमानता को दूर कर राष्ट्र निर्माण में सभी जातियों, वर्गों, धर्मों के लोगों की भागीदारी को स्थापित करना था।
- प्रोफेसर योगेंद्र सिह के अनुसार, गांव तथा शहर में परिवर्तन स्वरूप आधुनिक औद्योगिक समाज में मध्यवर्ग एक सशक्त वर्ग के रूप में उभरा, जो अपने समूह के हितों के प्रति ज्यादा संगठित थे।
- साम्राज्यवादी सम्राज्य के पतन के बाद पूंजीवादी साम्राज्य का उदय हुआ, जिसनें व्यक्ति के जीवन स्तर में सुधार, आर्थिक सशक्ता, शिक्षा का प्रचार-प्रसार और यातायात के संसाधनों का सार्वभौमिकरण आदि किया। इसके बाद भी मध्यम वर्ग व निम्न वर्ग की विचारधारा में व्यापक अंतर देखने को मिलता हैए क्योंकि मध्यम वर्ग के लोग पूंजीवाद को बचाना चाहते हैं, जबकि निम्न वर्ग आर्थिक व सामाजिक बुनियादी व्यवस्था के पक्षधर हैं।
- भारत की औद्योगिक नीति मिश्रित आर्थिक व्यवस्था है, जिसमें निजी उद्योग व सार्वजनिक उद्योग मिलकर राष्ट्र के विकास में अपना योगदान देते हैं।
- निजी क्षेत्र ने पूंजीवाद को तथा सरकारी क्षेत्र ने समाजवाद को जन्म दिया। जनता व सरकार की नीतियों के परिणाम स्वरूप सामाजिक परिवर्तन की गति तीव्र हुए हैं।
- शिक्षा का आधुनिकरण तथा वैज्ञानिक शिक्षा का विकास हुआ, जिस कारण अनेक विरोधाभास उत्पन्न हुए, इन विरोधभासो ने ही आंदोलन एवं संघर्ष को जन्म दिया जैसे श्रमिक आंदोलन, जाति आंदोलन आदि, जिसका समाज पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा।
- प्रोफेसर योगेंद्र सिह का मत है, कि हमें एक ऐसी नवीन समाज को विकसित करना चाहिए, जिसमें वैज्ञानिकता के साथ धार्मिक भावनाओ और मान्यताओं को भी वैधानिकता प्राप्त हो। हमें क्रांतिकारी मूल्यों की स्थापना, समाजवादी विचारों पर करनी होगी, जिसके लिए हमें लोकतंत्रत्मक प्रणाली का सहारा लेना होगा।
- प्रोफेसर योगेंद्र सिह के अनुसार भारतीय समाज की परंपरा का आधुनिकीकरण मुख्य रूप से ब्रिटिश शासन के पश्चिमी संपर्क का परिणाम रहा है, जिसके फलस्वरुप यहां की संस्कृति एवं संरचना में परिवर्तन हुए। इसके बाद भी यह ध्यान रखना आवश्यक है, कि पश्चिमी संपर्क से उत्पन्न सभी परिवर्तनों को आधुनिकीकरण नहीं कहा जा सकता है।
- आधुनिकीकरण के व्यवहार के अतिरिक्त, भारतीय समाज के संरचनात्मक औद्योगिकरण की प्रक्रिया का भी आरंभ हुआ। जिसके तर्ज पर आधरित प्रशासनिक अथवा न्याय व्यवस्था, सैन्य संगठन, औद्योगिक अधिकारी तंत्र, आर्थिक अभिजन वर्ग आदि नए व्यवस्थाओं में नये वर्गों के फलस्वरूप भारतीय समाज की संरचना में अनेक परिवर्तन हुए।
- प्रोफेसर योगेंद्र सिह के अनुसार भारत में औद्योगीकरण के फलस्वरुप यहां एक नए औद्योगिक श्रमिक वर्ग तथा श्रमिक संगठनों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन की प्रकृति लगभग पूरे भारत में एक जैसी देखने को मिलती है।

निष्कर्ष

भारतीय समाज के परिवर्तन का एक रूप यहां की राजनीतिक संस्कृति में देखने को मिलता, व्यस्क मताधिकार पर लोकतांत्रिक व्यवस्था द्वारा प्रत्येक पक्ष का राजनीतिकरण संभव हो पाया, जिसके परिणाम स्वरूप आज हिंदू विवाह एवं उत्तराधिकार से संबंधित अनेक सुधार किए गए, जिसमें परंपरागत हिंदू पारिवारिक संस्कृति में व्यापक परिवर्तन देखने को मिले।

प्र. भारतीय राष्ट्रवाद की वृद्धि की सामाजिक पृष्ठभूमि का परीक्षण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर : सामाजिक तथ्यों की तरह राष्ट्रवाद भी ऐतिहासिक तथ्य है। लोकजीवन के विकास क्रम में वस्तुनिष्ठ और भावनिष्ठ दोनों प्रकार के ऐतिहासिक तत्वों की परिपक्वता के पश्चात् राष्ट्रवाद का उदभव हुआ।

10

भारत में ग्रामीण एवं कृषि रूपांतरण

प्र. परीक्षण कीजिए कि क्या ग्रामीण बंधन अभी भी एक सामाजिक यथार्थता के रूप में जारी है। अपना तर्क दीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से ग्रामीण का उदय सामाजिक संरचना में आये उन महत्वपूर्ण परिवर्तनों से हुआ जहां खानाबदोशी जीवन की पद्धति, जो शिकार भोजन संकलन तथा अस्थायी कृषि पर आधारित थी का संक्रमण एवं इससे सम्बंधित व्यवसायों पर आधारित होती है।

- गांव को प्रमाणिक स्थानीय जीवन के चरम परिचायक के रूप में देखा गया है, यह एक ऐसा स्थान है जहां वास्तविक भारत को देखा जा सकता है और यह समझा जा सकता है कि किस प्रकार स्थानीय लोग अपने संबंधों और विश्वास की प्रणाली को संगठित करते हैं। ग्रामीण समाज के संबंध कुछ विशिष्ट प्रकार के संबंधों पर आधारित होते हैं, सामान्य संबंध स्पष्ट है कि ग्राम्य जीवन विभिन्न पक्षों/पहलुओं में विभाजित होता है परन्तु फिर भी एक बंधन में बंधे रहते हैं।
- डॉ. श्रीनिवासन के अनुसार ग्रामीण लोग आर्थिक और सामाजिक रूप से आपस में जुड़े होते हैं। डॉ. श्रीनिवासन ने अपनी पुस्तक 'Religion and Society among the coorges of South India' में जाति की प्रक्रिया को व्यक्त करने हेतु संस्कृतिकरण के प्रत्यय का प्रयोग किया है। संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का संबंध किसी एक व्यक्ति या परिवार से नहीं हैं वरन एक समूह से है। यदि कोई अकेला व्यक्ति या परिवार की ऊपर की ओर गतिशील होता है तो उसके लिए अपने बेटे के लिए बहुएं और बेटियों के वर प्राप्त करने में कठिनाई प्राप्त हो जाती है।
- दुबे ने तर्क दिया कि यद्यपि भारत के गांव अपनी आर्तरिक संरचना और संगठन, लोकाचार और विश्व-दर्शन और जीवनशैली तथा विचारशैली व्यापक रूप से भिन्न-भिन्न हो सकती है लेकिन विभिन्न मामलों में सम्पूर्ण भारतवर्ष के ग्रामीण समुदाय में एक जैसी विशेषताएं पाई जाती है।
- सामाजिक संगठन के रूप में ग्रामीण बंदोबस्त एक प्रकार के भाईचारे का प्रतिनिधित्व करता है, जो नातेदारी, जाति और वर्ग से भिन्न है। प्रत्येक गांव का अपना विशेष अस्तित्व होता है, कुछ निजी रीति-रिवाज और कहावतें होती हैं और वाणिज्यिक एकता होती है।
- गांव में रहने वाली विभिन्न जातियां और समुदाय आर्थिक, सामाजिक और अनुष्ठानिक रूप में एकीकृत होती है और ये परंपरागत रूप से आमतौर पर स्वीकार्य पारस्परिक बाध्यताओं, मान्यताओं और सहमति से सूत्रबद्ध होती हैं।
- ग्रामीण समाज में समूहों और गुटों के होते हुए भी गांव के लोग बाहरी दुनिया का संगठित और एक होकर सामना करते है और रहते हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों में जाति विभाजन ने सभी सामाजिक संबंधों को निर्धारित और निश्चित किया। ज्यादातर विद्वानों ने जाति को एक बंद व्यवस्था के रूप में देखा, जहां किसी सामाजिक स्थिति में प्रवेश वंशानुगत और व्यक्तिगत उपलब्ध थी।
- इसके अतिरिक्त कुछ लोग ऐसे थे, जिन्होंने स्वीकार किया कि जिस तरह से जाति को स्थानीय रूप से संचालित किया गया है वह वर्ण व्यवस्था में वर्णित व्यवस्था से मौलिक रूप से भिन्न है।
- तथापि उनमें से अधिकांश ने जाति प्रथा को जजमानी व्यवस्था के ढांचे में कार्य करते देखा और एक गांव में या गांवों के समूह में रहने वाली विभिन्न जातियों को स्थायी और व्यापक संबंधों में एक दूसरे के प्रति बंधे हुए देखा।

निष्कर्ष

ग्रामीण आबादी अपेक्षाकृत कम होती है और अपनी सामाजिक प्रस्थिति के अनुसार ही ये समूह बना कर रहते हैं। समान प्रस्थिति के लोगों के घर भी आस-पास ही होते हैं, जिससे वर्तमान समय में भी ग्रामीण बंधन मजबूती के साथ विद्यमान है।

प्र. ग्रामीण विकास में सहकारी समितियों की भूमिका पर टिप्पणी कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: 'सहकारिता' शब्द का तात्पर्य समान रुचि और गतिविधि के साथ समान आधार पर गठित लोगों के एक स्वैच्छिक समूह से है, जो सामूहिक और व्यक्तिगत लाभ के लिए संसाधनों का सामूहिक लाभ उठाते हैं।

भारत में सहकारी समितियों की स्थापना, ग्रामीण किसानों को साहूकारों के शोषण से मुक्त करने, तकनीकी जानकारी प्रदान करने, भूमि-पैमाइश की अर्थव्यवस्था प्रदान करने और जीवन स्तर में सुधार करने के उद्देश्य से किया गया था।

12

राजनीति एवं समाज

प्र. लोकतंत्र को शक्तिशाली बनाने में दबाव समूहों की भूमिका की चर्चा कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: राजनीतिक दलों के अतिरिक्त समाज में कुछ ऐसे स्वयंसेवी समूह भी होते हैं जो जनता के विशेष हितों की समाज में रक्षा करते हैं।

- दबाव व हित समूह पूरी तरह से संगठित समूह होते हैं, जिनके सार्वजनिक व सामाजिक हित होते हैं तथा ये समूह सरकार की नीति निर्धारक प्रक्रिया को बाहरी दबाव डालकर प्रभावित करते हैं। दबाव समूहों की सदस्यता स्वैच्छिक होती है और ये प्रत्येक देश में पाए जाते हैं।
- इन दबाव समूहों के कार्य बहुत ही सीमित व संकीर्ण होते हैं। इनका चरित्र बहुत ही अनौपचारिक, संकीर्ण और गैर मान्यता प्राप्त होता है।
- ये दबाव समूह राजनीतिक दलों के विपरीत चुनावों में भाग नहीं लेते। ये अनेक तकनीकों के माध्यम से सरकार पर दबाव डालते हैं, इसी कारण से इन्हें दबाव समूह कहा जाता है। इन सबके बावजूद भी ये देश की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं और जनमत को लामबंद करने में सहायक होते हैं।

लोकतंत्र को शक्तिशाली बनाने में दबाव समूह की भूमिका

दबाव समूहों की गतिविधियां 'लॉबी' नाम से प्रचलित हैं। 'लॉबी' एक अमरीकी शब्द है, लेकिन आज इसका प्रयोग न केवल यूरोपीय लोकतंत्रों में किया जाता है, बल्कि जापान सहित विश्व के अन्य बहुत से देशों में किया जाता है।

- यह सदन के भीतर लॉबी की ओर इंगित करता है, जहां संसद सदस्य और विधायक सदन से संबंधित कार्रवाइयों पर चर्चा करते हैं।
- राजनीतिक प्रणाली में दबाव समूह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये जनता और राजनीतिक दलों के बीच एक कड़ी के रूप में तथा संचार के एक साधन के रूप में कार्य करते हैं।
- ये लोगों को बहुत से सामाजिक आर्थिक मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनाते हैं तथा उन्हें राजनीतिक रूप से शिक्षित भी करते हैं। ये बहुत ही प्रभावशाली नेतृत्व का निर्माण करते हैं तथा भविष्य के नेताओं को एक प्रशिक्षण मंच मुहैया कराते हैं।
- ये समाज के बहुत-से परंपरागत मूल्यों के बीच के अंतर को कम करने का प्रयास भी करते हैं। एकता और अखंडता की स्थापना ही दबाव समूहों के कार्यों का मुख्य परिणाम है।
- किसी देश के राजनीतिक संस्थान दबाव समूहों के कार्य और उनके मुख्य उद्देश्यों को सुनिश्चित करते हैं।

निष्कर्ष

मानवीय उद्देश्यों जैसे शांति, पर्यावरण सुरक्षा, मानवाधिकार आदि की पूर्ति के लिए कार्य करते समय दबाव समूह एक प्रबुद्ध जनमत के निर्माण की कार्यपद्धति को अपनाते हैं और संवेदना तथा तार्किकता की भावना को उत्पन्न करते हैं।

- ये विशेष राष्ट्रीय अभियानों के आयोजन और अंतर्राष्ट्रीय एकता से संबंधित गतिविधियों के द्वारा अपना कार्य करते हैं। एड्स, आतंकवाद और परमाणु बम के खिलाफ छेड़े जाने वाले आंदोलन इसी प्रकार के अभियानों के कुछ उदाहरण है।

प्र. राजनीतिक अभिजात्यों की संरचना की परिवर्तनशील प्रकृति की चर्चा कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: रजनी कोठारी के अनुसार 1960 के दशक के बाद राजनीतिक अभिजात्यों की प्रकृति में बदलाव राज्य की परिवर्तित सामाजिक-आर्थिक व जनसांख्यिकीय रूपरेखा का परिणाम था। राज्य की रूपरेखा में ऐसा परिवर्तन आम जनता की राजनीतिक लामबंदी के साथ-साथ नए राजनीतिक वर्गों के उद्गमन का भी परिणाम था।

- नडेल (1956) के अनुसार अभिजात वर्ग "वे हैं जो अपनी श्रेष्ठता के कारण समाज के भाग्य पर प्रभाव डालते हैं"। समाज के अपने वर्ग द्वारा रखे गए मूल्यों और दृष्टिकोणों को आकार देने में एक विशिष्ट समूह के सदस्यों का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है।
- राइट मिल्स (1956) ने उन्हें "उन लोगों के रूप में वर्णित किया है जो बड़े परिणाम वाले निर्णय लेते हैं, जो दूसरों के विरोध करने पर भी अपनी इच्छा को साकार करने में सक्षम होते हैं, और जिनके पास सबसे अधिक धन, शक्ति और प्रतिष्ठा" है।
- भूमि सुधारों के पृष्ठपट में नए राजनीतिक वर्गों का उद्गम सीधे-सीधे ग्रामीण भारत में स्वाम्य कृषक वर्ग के उदय से जुदा था। सत्तर का दशक शुरू होते-होते मुख्यत: पिछड़ी जातियों से संबद्ध भू-स्वामित्व वाले सामाजिक रूप से प्रबल वर्ग राजनीतिक सत्ता में एक हिस्से की मांग करने हेतु पर्याप्त आर्थिक शक्ति अर्जित कर चुके थे।

13

आधुनिक भारत में सामाजिक आंदोलन

प्र. नृजातीयता को परिभाषित कीजिए। भारत में नृजातीय आंदोलनों की वृद्धि के लिए उत्तरदायी कारकों की चर्चा कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: घोष के अनुसार नृजातियता एक समूह या समूहों या समुदायों द्वारा दूसरों पर प्रभुत्व या अधीनता के एक या अधिक सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक प्रतीकों के सन्दर्भ में पहचान की चेतना के निर्माण और पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है, जो आत्मसतकरण पर-संस्क्रतिग्रहण, अन्त: क्रिया, प्रतिस्पर्धा और संघर्ष की प्रक्रियाओं द्वारा उत्पन्न होती है।

- नृजातीयता एक प्रक्रिया है जो नृजातीय समूह के सदस्यों के मध्य नृजातीय चेतना के बोध को उत्पन्न करती है और समान जाति, भाषा और धर्म के सदस्यों को उनके आर्थिक और राजनीतिक हितों को स्पष्ट करने के लिए गतिशील बनती है।
- सामाजिक विज्ञान के अंतर्राष्ट्रीय शब्दकोष के अनुसार प्रजातीय समूह एक बड़े समाज में जनसंख्या की अलग श्रेणी है, जिसकी संस्कृति आमतौर पर अपने स्वयं के समाज से अलग होती है।
- इस प्रकार के समूह के सदस्य अपने आप को संस्कृति या राष्ट्रीयता या प्रजाति के सामान्य संबंधों द्वारा एक साथ बंधा हुआ मानते हैं या महसूस करते हैं या सोचते हैं। जब बहुसंख्यक समूह द्वारा उन्हें उनके अधिकारों, स्वतंत्रताओं और समानताओं से वंचित कर दिया जाता है तब वे अपने समूह बनाते हैं।

भारत में नृजातीय आंदोलन के लिए उत्तरदायी कारक

नृजातीय आंदोलन आधुनिक राज्यों की समरूपता की प्रवृत्ति और उनकी तकनीकी/शैक्षिक अनिवार्यताओं का परिणाम है, जो निम्नलिखित है:

जनसंख्या में विविधता : भारत एक बहुल समाज है। यह यहां रह रही अनेक जातियों और बहुत से धर्मों, भाषाई, सांस्कृतिक व प्रजातियों समूहों के साथ इसकी जनसंख्या में बड़ी विविधता के द्वारा चित्रित होता है। दुर्लभ आर्थिक संसाधनों के लिए तीव्र प्रतिस्पर्धा और विभिन्न समूहों के लोगों में अपनी पुरानी संस्कृति को बनाए रखने के लिए बढ़ी चेतना के कारण भारत हमेशा से ही नृजातीय पहचानों के दावों के प्रति संवेदशील रहा है।

असंतुलित आर्थिक विकास : देश के असंतुलित आर्थिक विकास, जिसके कारण कुछ समूह अपने आप को हाशि पर और विकास की प्रक्रिया में पूर्ण रूप से पिछड़ा हुआ महसूस करते हैं। असंतुलित आर्थिक विकास ने नृजातीय आंदोलन को बढ़ावा देने का कार्य किया है।

राजनीतिक शक्ति के लिए प्रतिस्पर्धा : भारत में प्रतिनिधित्व संसदीय लोकतंत्र है जहां पर विभिन्न नृजातीय समहू (जातियां, धार्मिक समूह, भाषाई समूह आदि) क्षैतिज एकता और सांझे हितों के एकीकरण पर जोर द्वारा राजनीतिक शक्ति के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं।

जाति धर्म का बढ़ता राजनीतिकरण : जाति और धार्मिक पहचानों को अक्सर राजनीतिक नेताओं द्वारा लोगों को उनके निहित हितों और क्षुद्र राजनीतिक लाभों के लिए जुटाने को तैयार किया जाता है।

हिन्दू बहुल जनसंख्या : अल्पसंख्यकों (भाषाई और धार्मिक) के बीच डर कि वे प्रभावशाली संस्कृति में आत्मसात हो सकते हैं, जिससे उनकी सांस्कृतिक विरासत कमजोर हो जाएगी। इस प्रकार यहां पर क्षैतिज एकता को विकसित करने के लिए नृजातीय पहचान पर जोर दिया गया। एसी भावनाएं इसलिए भी बढ़ी है क्योंकि वैश्वीकरण और सांस्कृतिक एकरूपता की प्रक्रिया सभी जगह घट रही है।

दोषपूर्ण विकास नीतियां : भारत की जनजातियों के बीच दोषपूर्ण विकास नीतियों के कारण अलगाव की तीव्र भावना, उनको उनकी पुरानी बसी हुई भूमि और जंगल से जबरन विस्थापित की ओर अग्रसर कर रही है, और गरीबी तक सीमित कर रही है। इससे भी भारत में नृजातीय आन्दोलन के विकास में बढ़ावा मिला है।

निष्कर्ष

शैक्षिक संवाद में नृजातीयता एक लोकप्रिय अवधारण है। अपनी नृजातीय पहचान के निर्माण के लिए एक नृजातीय समूह के सदस्य सामान्य भाषा, सामान्य इतिहास, सामान्य संस्कृति और सामान्य क्षेत्र से जुड़े होते हैं। भारत विभिन्न प्रमुख नृजातीय आंदोलनों से गुजरा है।

प्र. भारत में दलित आंदोलनों में शामिल विभिन्न मुद्दों को सामने लाएं। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर : दलित आंदोलन भारत में दलितों की प्रस्थिति में सामाजिक राजनीतिक परिवर्तन लाने के लिए एक विरोध आंदोलन के रूप में शुरू किया गया था। नयी राजव्यवस्था, उत्तर आधुनिक प्रशासनिक ढांचा, तर्कसंगत न्यायिक व्यवस्था, पट्टेदारी और कराधान के वर्तमान रूप, व्यापार की नए तरीके, उदार शिक्षा प्रणाली और संचार के जाल ने दलितों के लिए स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय की भावना पर विशेष बल दिया है।